स्वदेशी पत्रिका

वर्ष-15, अंक-4, चैत्र-वैशाख 2064, मार्च, 2007

संपादक
विद्यानंद आचार्य

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर-8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम, नयी दिल्ली-110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011-26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित।

टंकण एवं सज्जा : **प्रेम जोया**

आवरण लेख - 4

नंदीग्राम की घटना के लिए माकपा सरकार एवं उसके मुख्यमंत्री जिम्मेदार हैं। बावजूद इसके मुख्यमंत्री ने इस्तीफा नहीं देकर ओछी मानवता का परिचय दिया है

कॅवर पेज

अनुक्रम

आवरण लेख
विकास, विस्थापन और पुनर्वास
- रुद्रदत्त 4
माकपा का मुखौटा नंदीग्राम के आईने में
- महाश्वेता देवी 11
चित्रों की जुबानी नंदीग्राम 13

बहस
वामपंथ का दोहरा चरित्र और खूनी खेल
- राकेश सिन्हा 17

कृषि
अब भी जारी है गेहूँ संकट
- देवेन्द्र शर्मा 19

बजट
श्रम-सघन उत्पादों पर आयातकर बढ़ाइये
- डॉ. भरत झुनझुनवाला 21
चुनाओं पर टिकी है बजट की नजर
- डॉ. सूर्यप्रकाश अग्रवाल 23

राष्ट्र
अतिजनसंख्या से उपजी अव्यवस्था
- दीपक कुमार सेन 25

श्रम
बाल श्रम में सिसकता बचपन
- डॉ. जयपाल शर्मा 27

विकास
आइए परंपरागत ज्ञान की अदला-बदली करें
- चन्द्रभान प्रसाद 29

रपट
यौन शिक्षा भारतीय सभ्यता के लिए घातक
- चन्द्रप्रकाश सिंह 31

व्यापार
खुदरा बाजार को विदेशियों से खतरा
- मोहन गुरुस्वामी 32

बाजार
कबिरा खड़ा बाजार में मांगे अपनी खैर
- डॉ. जयप्रकाश मिश्र 34

संदर्भ
माकपा के माथे पर कलंक
- स्वपनदास गुप्त 36

संस्कृति
रामेश्वरम का अस्तित्व मिटाने की साजिश
- आर.पी. दुबे 38

पाठकनामा 2

समाचार परिक्रमा 40

डब्ल्यूटीओ 44

पाठकनामा

नंदीग्राम आजाद भारत के इतिहास का काला अध्याय

नंदीग्राम का नरसंहार आजाद भारत के इतिहास का वह काला अध्याय है, जिसने अंग्रजों के समय हुए जलियाँवाला हत्याकांड की याद को सहज ही ताजा कर दिया है, लोकतंत्र के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि केवल अपने जायज हक की मांग कर रहे देश के अन्नदाता किसानों के सीनों को प्रशासन के निर्देश पर छलनी कर दिया गया। लोकतंत्र की दुहाई देने वाली सरकार के ही कारिदों ने न केवल न्यायव्यवस्था की धज्जियाँ उड़ाईं बल्कि महिलाओं के साथ बलात्कार की घटना ने पूरे लोकतांत्रिक देश को ही शर्मसार कर दिया। सरकार की गोलियों के शिकार किसानों, मजदूरों और ग्रामीणों का केवल दोष यह था कि उन्होंने सरकार की तानाशाही के खिलाफ शांति प्रदर्शन किया, माँ तुल्य अपनी धरती माता को बचाने के लिए सरकार से गुहार लगाई। सरकार ने इनकी भावनाओं की कद्र नहीं की, शांति प्रदर्शन और इनके अनुरोध को इनकी कमजोरी समझकर हमेशा–हमेशा के लिए गरीब मजदूरों की जुबान को बंद करने की कोशिश की। इस घटना को देखने और सुनने के बाद तो ऐसा लगता है कि अंग्रेज शासकों और पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य की सोच में कोई अंतर नहीं है। विदेशी होते हुए भी अंग्रेजों के हृदय का एक पक्ष संवेदनशील हो सकता था लेकिन गरीब, मजदूरों और किसानों के रहनुमा होने का दावा करने वाली पश्चिम बंगाल की सरकार इतनी संवेदनहीन हो सकती है, शायद ही किसी ने सोचा होगा।

अनुराग सक्सेना, सरोजनी नगर, दिल्ली

❑❑❑

कम मतदान गंभीर चिंता का विषय

जिस देश में सब कुछ जब बिकता हो, निष्ठा और ईमानदारी खुलेआम सड़कों पर बिकती हो, निष्ठा और इमानदारी की शपथ लेने वाले देश के कर्णधार ही वोटों का सौदा करें। निर्वाचन अधिकारी पूरे पांच साल तक ऐसी लगे कमरों में बैठकर चुनाव व्यवस्था के नाम पर महज खानापूर्ति करते रहें और चुनाव के समय केवल अपनी जेब भरने में लग जाएं ऐसे में स्वच्छ एवं पारदर्शी प्रशासन की उम्मीद कैसे की जा सकती है। पांच अप्रैल को हुए दिल्ली नगर निगम चुनाव के समय जहां मीडिया ने उम्मीदवारों को वोट पाने के लिए नोट वांटते दिखाया, वोटरों की सुरक्षा व्यवस्था में लगे पुलिस कर्मियों को नोट लेते बताया यह लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। वैसे तो निर्वाचन आयोग निष्पक्ष और ईमानदारी की बात करते नहीं थकता जबकि सच्चाई यह है कि राजनीति में बढ़ते अपराध और भ्रष्टाचार के लिए निर्वाचन आयोग एक कड़ी के रूप में काम कर रहा है। नगर निगम चुनाव के समय कम हुए मतदान पर निर्वाचन आयोग ने चिंता व्यक्त की है और इसके लिए मतदाताओं को जिम्मेदार बताया है, कि लोग चुनाव में रूचि नहीं लेते। जबकि सच्चाई इसके विपरीत है। कम मतदान के लिए वोटर नहीं बल्कि निर्वाचन अधिकारी कहीं अधिक जिम्मेदार हैं। जो वोट बनाने और काटने के समय जनता के बीच न जाकर अपनी मनमर्जी से कार्यालय में बैठकर सब कुछ तैयार करते हैं। दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश की राजधानी दिल्ली के नगर निगम चुनावों में 43 प्रतिशत मतदान गंभीर चिंता का विषय है। राज्य के चुनाव आयुक्त एस.पी. मारवाह ने भी इस निर्णय पर आश्चर्य व्यक्त किया। इसका मतलब यह कतई नहीं लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति जनता उदासीन है बल्कि नगर निगम जनसेवा का मंच बनने के बजाय राजनीति का अखाड़ा बन गया है।

श्वेता सिन्हा, मदनपुर खादर, नई दिल्ली।

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क ***'स्वदेशी पत्रिका'*** दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्क: 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

''राष्ट्र के लिए जीना राष्ट्र के लिए मरने से ज्यादा कठिन है। जहां देश के लिए जीने की बात होती है, वहां अपने घर में गरीबी को आमंत्रण देना पड़ता है, सुख–वैभव को भूलना होता है, दरिद्रता को अंगीकार करना होता है। इन सभी बातों से निराश न हो केवल राष्ट्र के लिए जीना है, ऐसा सोचने वालों से ही राष्ट्र की प्रगति संभव है।''

–पू. कु.सी. सुदर्शन
सर संघचालक, रा. स्वयं सेवक संघ

जलवायु परिवर्तन के मामले में भारत बहुत नाजुक मोड़ पर खड़ा है। यदि यही स्थिति जारी रही तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

डॉ. मनमोहन सिंह
प्रधानमंत्री, भारत

कानून हमें इजाजत नहीं देता, नहीं तो हम कुछ भ्रष्टाचारियों को सरेआम फांसी दे देते, तभी भ्रष्टाचार के नाम से लोग डरेंगे।

एम. काटजू
न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय

जो लोग इतिहास से अच्छी तरह वाकिफ नहीं हैं, उन्हीं के लिए विक्रमी संवत, धार्मिक और सांप्रदायिक है और अंग्रेजी कैलेंडर धर्मनिरपेक्ष, जबकि सच्चाई इसके उलट है।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्य प्रदेश

जो देश आज से 15 साल पहले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए हाथ फैलाए घूम रहा था वह आज बड़ी–बड़ी विदेशी कंपनियों का अधिग्रहण कर रहा है।

लक्ष्मी निवास मित्तल
आर्सेलर मित्तल कंपनी के अध्यक्ष

तानाशाह पद छोड़ते नहीं हैं, उन्हें जबरन बाहर का रास्ता दिखाया जाता है।

असमाँ जहाँगीर
मानवाधिकार कार्यकर्ता, पाकिस्तान

माकपाई जनसंहार

पश्चिम बंगाल के पूर्वी मेदिनीपुर के नन्दीग्राम में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कैडरों के नेतृत्व में वहां की मार्क्सवादी पुलिस ने 14 मार्च 2007 को जो मौत का तांडव रचा है उससे जालियाँवाला बाग हत्याकांड की याद ताजा हो जाती है। सतारूढ़ पार्टी के खूंखार एवं हिंसक समर्थकों के नेतृत्व में आधुनिक हथियारों से लैस 5000 पुलिस कर्मियों के जत्थे ने नन्दीग्राम में बेसहारा किसानों, ग्रामीणों, महिलाओं एवं मासूम बच्चों पर गोलियों की बौछारें कर उन्हें मौत की नींद सुला दिया। सरकार ने 14 लोगों के मरने की बात कही। जबकि सभी गैर सरकारी अनुमान में मरनेवालों की संख्या सौ से डेढ़ सौ बता रहे हैं। एसा कहने वालों में वामपंथी लेखक एवं विद्वान भी हैं। एनडीए ने राष्ट्रपति को सौंपे अपने ज्ञापन में मरने वालों की संख्या कहीं अधिक होने की शंका जतायी है। अभी भी कई बच्चे एवं स्त्रियाँ गायब हैं। नंदीग्राम में लगभग दस दिनों के बाद एक सड़ा गला शव बरामद हुआ। सरकारी आदेश का उल्लंधन करने के अपराध में नंदीग्राम के किसानों को सबक सिखाने का यह माकपाई तरीका है। जिस किसी को भी बंगाल की जमीनी सच्चाई का पता होगा उनके लिए यह समझना आसान होगा कि प. बंगाल में कैडर एवं प्रशासन का गठजोड़ कितना हिंसक है और माकपा के लंबे शासनकाल का राज क्या है? नंदीग्राम में मार्क्सवादियों की बर्बरता हिंसा तक सीमित नहीं रही अपितु महिला उत्पीड़न एवं मानवाधिकार पर गला फाड़–फाड़ कर चिल्लाने वाली माकपा के समर्थकों ने नंदीग्राम में महिलाओं के साथ बलात्कार भी किया। मेनस्ट्रीम के संपादक ने भी कहा कि नंदीग्राम की तुलना जालियाँवाला बाग से की जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इस पूरे प्रकरण में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी सरकार द्वारा जिस प्रकार की सफाई प्रस्तुत की जाती रही उससे नंदीग्राम हिंसा के प्रायोजित होने का अंदेशा बढ़ जाता है। नंदीग्राम की घटना के बाद विधानसभा में अपने भाषण में मुख्यमंत्री ने हिंसा पर बिना चिंता जताए कहा कि सरकार की ओर से नंदीग्राम में भूमिअधिग्रहण हेतु कोई सूचना जारी नहीं की गई थी। दिल्ली में माकपा की एक प्रमुख नेत्री ने भी पत्रकारों को यह जानकारी दी। बुद्धदेव भट्टाचार्य के इस बड़े सफेद झूठ का भंडाफोड़ उस समय हो गया जब स्थानीय लोगों ने हल्दिया विकास प्राधिकरण द्वारा जमीन अधिग्रहण संबंधित दस्तावेज पत्रकारों को बाँट दिया। ठीक इसी प्रकार सरकार कहती रही कि नंदीग्राम में सरकार की ''रासायनिक सेज'' बनाने की कोई योजना नहीं थी जबकि सलेम समूह के साथ हुए करार एवं अन्य दस्तावेज इसको नकारते हैं। 16 मार्च को पुनः माकपा द्वारा झूठ का पुलिंदा जारी किया गया जिसमें यह बताने का प्रयास किया गया कि गलती नंदीग्राम के किसानों एवं ग्रामीणों की थी जिन्होंने बमों एवं हथियारों से लैस होकर पुलिस पर आक्रमण किया जबकि यह झूठ पर आधारित है। तेरह बिदुंओं के इस 'सत्य प्रतिवेदन'' में यह उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार वहां के लोगों ने माकपा के कार्यकर्ताओं को मारा, पीटा और जिंदा जलाया। लेकिन मार्क्सवादी विद्वानों की मंडली ने अपनी जाँच में इस प्रकार की किसी भी घटना का उल्लेख नहीं किया। पुनः 19 मार्च को झूठी घोषणाओं से भरा एक तथ्य पत्रक सीपीआई (एम) क वेबसाइट पर जारी किया गया जो सच्चाई से मेल नहीं खाता था।

दरअसल देश में वामपंथी विचारधारा की मौत हो चुकी है। मार्क्सवादी विचारधारा के जो राजनैतिक प्रतीक इधर–उधर दिखायी दे रहे हैं वे बुझती लौ के पहले की गर्मी हैं। एक विचारधारा के रूप में इसका भी अंत पहले हो चुका है। दोमुँहापान ही इसके जीवन का आधार बना हुआ है। जिस सेज को स्थापित करने के लिए माकपा की सरकार को प.बंगाल में गोलियाँ चलानी पड़ती है उसी सेज का केन्द्र में वह विरोध करती है। विरोध का यह मगरमच्छी प्रयास एक–दो बार तो विश्वसनीय लगता है लेकिन बाद में विश्वसनीयता खत्म हो जाती है। श्रमिक आंदोलन के बल पर टिकी माकपा ने श्रमिकों के हितों के साथ भी हमेशा छलावा किया है। प. बंगाल में हर वर्ष पूंजीपतियों द्वारा उद्योगों में तालाबंदी की सबसे अधिक घटनाएं होती हैं। माकपा सर्वहारा, श्रमिक एवं दलितों और पिछड़ों की बात करती है तो उसके राज में लंबे शासन के बाद भी इन लोगों एवं समूहों की बदतर स्थिति क्यों है? क्यों माकपा के सर्वाधिक मंत्री उँची जाति के लोगों से चुनकर आते हैं। मंडल आरक्षण को शीघ्रता से लागू करने की बात करने वाली माकपा अपनी पार्टी के भीतर मंडल फार्मूला क्यों नहीं लागू कर पाती है। नंदीग्राम ने माकपा की सच्ची तस्वीर लोगों के सामने रखी है। पूर्णतः बाहर से आयातित विचारों के आधार पर भारत में राजनीति चलाने वाली माकपा के अस्तित्व पर नंदीग्राम उसके ताबूत की अंतिम कील साबित होगी। स्पष्ट है कि पार्टी का यह कहना कि वह बंगाल में औद्योगीकरण से पीछे नहीं हटेगी, महज कोरी बयानबाजी है। कम से कम आंकड़े तो एसा नहीं कहते हैं।

नंदीग्राम की घटनाओं पर राजधानी दिल्ली के वामपंथी बुद्धिजीवियों की चुप्पी उनके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। देश, दुनियाँ में उनके विचारों के विपरीत एक छोटी सी घटना पर भी इन बुद्धिजीवियों के समूहों द्वारा सामूहिक निंदा प्रस्ताव, धरना प्रदर्शन का आयोजन होता है। कभी–कभी तो विरोध इतना नाटकीय होता है कि घटना की सच्चाई से उसका दूर–दूर तक संबंध नहीं होता है। लेकिन पहले सिंगूर और अब नंदीग्राम की घटनाओं पर इन लोगों की चुप्पी ने अनेक सवाल खड़े किए हैं। भविष्य में यदि पुनः किसी घटना के विरोध में उनका हस्ताक्षर अभियान चलता है तो उसकी कितनी विश्वसनीयता रह जाएगी यह स्पष्ट है। नंदीग्राम की घटनाओं से देश के भावी पीढ़ी में यह संदेश स्पष्टता से पहुंचा है कि वामपंथी दल अलोकतांत्रिक, हिंसक और सत्ता में लाभ का अवसर प्राप्त करने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। वे अपने आदर्शों से उलटबाजी भी लगा सकते हैं। इसलिए तथाकथित औद्योगीकरण के नाम पर यह सर्वहारा को गोलियों से भूनकर उद्योगपतियों के हितैषी के रूप में अपने को स्थापित करने में पीछे नहीं रहते। आज वामपंथी भी बाजारवादी शर्तों के अनुकूल अपने को ढालने लगे हैं। यही संदेश भारत से जाते समय चीन के प्रमुख हु जिंताओ ने भारत के वामपंथी दलों को कहा था। सेज के नाम पर वैसे तो केन्द्र से लेकर राज्य सरकारे सभी आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन देश की उपजाऊ भूमि को यदि उद्योगों के नाम पर इसीप्रकार पूंजीपतियों के हवाले करने का क्रम जारी रहा तो विस्थापन, पुनर्वास और खाद्य असुरक्षा के अलावा अनेकों नंदीग्राम आनेवाले दिनों में तैयार मिलेंगे।

विकास, विस्थापन और पुनर्वास

मुख्यमंत्री बुद्धदेव सहित माकपा पोलित ब्यूरो का दावा कि 96 प्रतिशत किसानों ने अपनी इच्छा से भूमि दी है, आंदोलन के लिए सड़कों पर उतरे लाखों ग्रामीणों ने इनके दावे को झूठ साबित कर दिया।

■ **रुद्रदत्त**

तीव्र औद्योगीकरण के उपकरण के रुप में विशेष आर्थिक क्षेत्र की अवधारणा को लागू करने के पश्चात् बहुत–सी राज्य सरकारों को उन्माद ने जकड़ लिया है कि वे औद्योगिक प्रगति का यही मार्ग अपनाएं। बड़े व्यापारिक घरानों – भारतीय एवं विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में एक होड़ सी लग गयी है कि वे राज्य से बड़े–बड़े प्रस्तावों की स्वीकृति प्राप्त कर लें। पश्चिम बंगाल की माकपा सरकार अकेली ऐसी सरकार है जिसमें विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) मुख्य वादविवाद का विषय बन गया है। एक ओर मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य हैं जिन्होंने इस विचार को आगे बढ़ाने में अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है, वहीं दूसरी ओर तृणमूल कांग्रेस की नेता ममता बैनर्जी ने जिस ढंग से राज्य सरकार इस प्रस्ताव को एकमात्र उपाय के रुप में लागू करना चाहती है, का पुरजोर विरोध किया है, विशेषकर सिंगूर में टाटा छोटी कार के प्रोजैक्ट और बाद में नन्दीग्राम के सलीम रसायन प्रोजैक्ट के लिए बड़े व्यापारिक घरानों के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए 1894 के भूमि अधिग्रहण कानून का सहारा लिया गया जिसके अधीन राज्य सरकार को 'सार्वजनिक उद्देश्य' के लिए भूमि अधिग्रहण का अधिकार प्राप्त है।

यह मानना रुचिकर होगा कि पश्चिम बंगाल में विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए कितनी भूमि चाहिए। पश्चिम बंगाल के ग्राम विकास के भूतपूर्व सचिव डॉ. बन्दयोपाध्याय द्वारा जिन्होंने 'पश्चिम बंगाल में ऑपरेशन बरगा' लागू करने में महत्त्वपूर्ण कार्यभाग अदा किया था, तैयार किए गए एक मोटे अनुमान के अनुसार इसमें 9 जिलों में 1,40,000 एकड़ भूमि की जरूरत है, जिसमें शामिल है मिदनापुर (37,927 एकड़), पश्चिम मिदनापुर (26,134 एकड़), हावड़ा (26,500 एकड़), दारजिलिंग (25,200 एकड़), दक्षिण 24 परगना (13,318 एकड़), उत्तर 24 परगना (5,743 एकड़), हुगली (6,247 एकड़), नाड़िया (365 एकड़) और जलपाईगुड़ी (161 एकड़)। राज्य सरकार ने भूमि अधिग्रहण करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया और इस प्रकार अधिग्रहण से प्राप्त कर भूमि को बड़े औद्योगिक घरानों को सौंपने की जिम्मेदारी ले ली। माकपा सरकार ने किसानों द्वारा भूमि को छोड़ने में विरोध को जो उनकी आजीविका का एकमात्र साधन थी, बहुत कम महत्त्व दिया। जिस बेदर्दी से पश्चिम बंगाल और सी.पी.एम. काडरों ने इस विरोध को कुचलने की कोशिश की, उससे विरोध और मजबूत हो गया और इसने अधिग्रहण से भूमि बचाओ आन्दोलन का रुप धारण कर लिया।

माकपा सरकार और सी.पी.एम. काडरों (कार्यकर्ताओं) ने आतंक का शासन कायम कर दिया और इसके विरोध में उतनी ही मजबूत जनता की शक्ति खड़ी हो गयी और सी.पी.आई. (एम.एल.) ने किसानों का साथ दिया। मुख्यमंत्री का

''जाहिर है कि सह सब कुछ बिना पारदर्शिता के और एक अत्यन्त अलोकतांत्रिक ढंग से किया गया।'' वामपंथी बुद्धिजीवियों और पत्रकारों द्वारा गठित नागरिक परिषद ने सिंगूर और नन्दीग्राम के बारे में भयभीत करने वाली घटनाओं का उल्लेख किया है।

यह दावा कि 96 प्रतिशत किसानों ने अपनी इच्छा से भूमि दी है, एक दम गलत साबित हुआ और इस बात की पुष्टि वामपंथी बुद्धिजीवियों और नागरिक परिषद ने सिंगूर और नन्दीग्राम का दौरा करने के बाद की।

प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर सुमित सरकार ने सिंगूर का दौरा करने के पश्चात साफ शब्दों में माकपा सरकार की निम्नलिखित शब्दों में निंदा की। ''जीवन भर वामपंथी विचार रखने वाला, मैं पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में हाल ही में हुई घटनाओं से गहरा दुःखी हुआ हूँ। ... तीन बातें साफ दिखायी देती हैं जिनके कारण पश्चिम बंगाल सरकार के कथन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। पहला, बार–बार यह कहा गया कि यह भूमि एक फसल वाली है, परन्तु यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ है और बहु–फसली है। दूसरा, इसमें संदेह नहीं कि जिन ग्रामवासियों को हम मिले, वे इस भूमि के अधिग्रहण के विरुद्ध हैं और अधिकतर ने क्षतिपूर्ति लेने से इन्कार कर दिया है.... तीसरा, हमने इस अधिग्रहण के लिए बल–प्रयोग करने, विशेषकर सितम्बर 25 और दिसम्बर 2 को बहुत से प्रमाण पाए।

''जाहिर है कि सह सब कुछ बिना पारदर्शिता के और एक अत्यन्त अलोकतांत्रिक ढंग से किया गया।'' वामपंथी बुद्धिजीवियों और पत्रकारों द्वारा गठित नागरिक परिषद ने सिंगूर और नन्दीग्राम के बारे में भयभीत करने वाली घटनाओं का उल्लेख किया है। इस परिषद के सदस्य थे : कोलिन मानसाल्वेस, सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ वकील, प्रोफेसर सुमित सरकार, प्रसिद्ध इतिहासकार, सुमित चक्रवर्ती, सम्पादक मेनस्ट्रीम, कृष्णा मजुमदार, दिल्ली विश्वविद्यालय और तनिका सरकार जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय। इनके द्वारा निम्नलिखित बातें बतायी गयी – ''हमारा यह मत बना कि नन्दीग्राम के लोग एक लम्बे और कड़े संघर्ष के लिए तैयार हैं। यह एक प्रशंसनीय साम्प्रदायिक सद्भाव से प्रेरित है और इसमें सभी राजनीतिक दलों का सहयोग प्राप्त है, इनमें से बहुत से कुछ दिन पहले सी.पी.एम. के समर्थक थे।'' हपने सिंगूर में एक दृढ़निश्चय किसान आन्दोलन देखा जो अभी तक शान्तिपूर्ण था, कुछ भूमि के इर्दगिर्द लगी बाढ़ पर, कुछ हमलों को छोड़कर। ग्रामवासियों ने संघर्ष करने का संकल्प कर लिया है, चाहे इसके लिए उन्हें कितनी भी बड़ी कीमत चुकानी पड़े।'' (मेनस्ट्रीम, 9–15 फरवरी, 2007)

नागरिक समिति का निष्कर्ष

सी.पी.एम. के पहले सदस्यों का बड़ा भाग और समर्थक अब इससे विमुख हो गये हैं। मुस्लिम भी बहुत अधिक आहत महसूस करते हैं क्योंकि उनकी जमायत पर साम्प्रदायिक होने का बेबुनियादी दोष लगाया गया है और वे इस बात से संतुष्ट नहीं हैं कि उनके नेताओं को माकपा नेतृत्व न आमंत्रित किया है कि वे उनके साथ बातचीत करें। हमें ऐसा लगता है कि किसानों की आशंकाएं पूर्णतया न्यायोचित हैं क्योंकि आज के उद्योग बहुत अधिक नौकरियां कायम नहीं करते। कृषि और ग्रामीण समुदायों का नुकसान किए बिना औद्योगीकरण के लिए विकल्प के तौर पर जगहें उपलब्ध हैं।''

सरकार को चेतावनी

''हम सत्ताधारी मोर्चे से आग्रह करते हैं कि वह अपनी भूमि अधिग्रहण नीति पर पुनर्विचार करें, लोगों के सभी वर्गों से बात करें और उनके तर्कों को गंभीरता से सुने। उन्हें औद्योगीकरण के लिए विकल्प स्थान ढूंढने के लिए संजीदगी से विचार करना चाहिए ताकि किसानों का विस्थापन न हो। उन्हें जनता से परामर्श कर सोचने की जरूरत है कि विकास के वैकल्पिक रूप क्या हो सकते हैं। अन्यथा गृह युद्ध छिड़ सकता है। (मेनस्ट्रीम 9–15 फरवरी 2007)

झूठ पर झूठ बोल रही सरकार

श्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने दो बातों पर बल दिया :– 1. 96 प्रतिशत किसानों ने अपनी इच्छा से औद्योगीकरण के लिए भूमि देना स्वीकार किया है। 2. पश्चिम बंगाल में केवल एक प्रतिशत भूमि काश्त के योग्य नहीं है। पहली बात कि 96 प्रतिशत किसानों ने अपनी इच्छा से जमीन सरकार को सौंपी है, इसके अपने सहायकों जैसे सी.पी.आई., आर.एस.पी. और फारर्वड ब्लॉक के गले के नीचे नहीं उतरी, विरोधी दल तृणमूल कांग्रेस, सामाजिक कार्यकर्ताओं जैसे मेधा पाटेकर की बात तो दूर रही, वामपंथी बुद्धिजीवियों ने भी खुले रुप में इसका विरोध किया।

दूसरे, पश्चिम बंगाल के प्रायोगिक अर्थशास्त्र और सांख्यिकी ब्यूरो के अनुसार राज्य में 18 प्रतिशत भूमि कृषि–अयोग्य है। कुल रुप में यह 15 लाख हैक्टेयर है, अर्थात् 37 लाख एकड़। डी.बन्दोपाध्याय ने इस कारण साधिकार कहा : ''मुख्यमंत्री ने कैसे निर्लज्ज रुप में यह वक्तव्य दे

दिया कि पश्चिम बंगाल में औद्योगीकरण के लिए कोई गैर–कृषि भूमि उपलब्ध नहीं है। बहु–फसली भूमि के नुकसान से खाद्यान्न के उत्पादन को हानि होगी। विशेषज्ञों का मत है कि विशेष आर्थिक क्षेत्र से औसतन पश्चिम बंगाल को 1.5 लाख टन खाद्यान्नों की हानि होगी। आने वाले वर्षों में इससे खाद्यान्नों का गंभीर अभाव हो सकता है।

भूमि–अधिग्रहण एवं आजीविका

पश्चिम बंगाल की सरकार ने 1874 के भूमि अधिग्रहण कानून का प्रयोग कर उद्योगों के लिए भूमि अधिग्रहित की। इसके लिए सरकार ने सार्वजनिक उद्देश्य के तर्क को बहाना बनाया। अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'सार्वजनिक उद्देश्य' की अवधारणा सार्वजनिक वस्तुओं अर्थात् राजमार्गों, पुलों, ग्रामीण, सड़कों, जल–विद्युत परियोजनाओं, स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, अस्पतालों से सम्बन्धित है। अतः जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय के प्रो. मनोज पंत ने पश्चिम बंगाल सरकार की सार्वजनिक उद्देश्य की अवधारणा पर प्रश्न–चिन्ह लगाया है। उनका मत है : ''कोई व्यक्ति सार्वजनिक उद्देश्य के वर्ग में राष्ट्रीय राजमार्गों, पुलों, ग्रामीण सड़कों आदि को वर्गीकृत कर सकता है, परन्तु जाहिर है कि यदि सरकार ''टाटा कार'' या ''सलीम कैमिकल्स'' के लिए भूमि अधिग्रहण करती है, तो उसे ''सार्वजनिक उद्देश्य'' में शामिल नहीं किया जा सकता। (इकॉनामिक टाइम्स, जनवरी 10, 2007)

दूसरा मुद्दा आजीविका की हानि और क्षतिपूर्ति से जुड़ा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसानों की आजीविका का मुख्य स्रोत भूमि है और यदि अधिग्रहित कर ली जाती है, तो वे अपनी आजीविका का स्रोत खो बैठते हैं। न केवल यह पश्चिम बंगाल में भूमि की काश्त वस्तुतः फसल सहभाजकों (बरगरदारों) द्वारा की जाती है। उनकी आजीविका भी समाप्त हो जाती है। प्रश्न उठता है, क्या किसानों एवं फसल सहभाजकों – दोनों का पुनर्वास होना चाहिए या सरकार केवल भू–स्वामियों का ही ध्यान रखें? मेधा पाटेकर जिन्होंने नर्मदा बचाव आंदोलन का नेतृत्व किया, कहती हैं : ''विस्थापन निरपवाद रुप से बिना पुनर्वास के हुआ है। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान 1894 में पारित भूमि अधिग्रहण कानून को बड़ी बेशर्मी से न केवल संपत्तियों के अधिग्रहण के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है, अपितु इसका प्रयोग थोड़ी सी नकदी के बदले जनता की आजीविका को समाप्त करने के लिए भी किया जा रहा है। (हिन्दुस्तान टाइम्स, 29 जनवरी, 2007)

अतः मुद्दा क्षतिपूर्ति की मात्रा और उसके ढंग का है। क्या राज्य को क्षतिपूर्ति निर्धारित करनी चाहिए या इसका सम्बन्ध भूमि के बाजार मूल्य से सम्बन्धित होना चाहिए? क्या सहभाजकों (बरगदारों) को जिन पर इस का प्रभाव पड़ता है, क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए? यदि ऐसा करना उचित है, तो क्षतिपूर्ति की मात्रा इस आधार पर तय होनी चाहिए।

बाजार बनाम राज्य–निर्धारित मूल्य

विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए भूमि–अधिग्रहण के अनुभव से पता चलता है कि रिलायंस इन्डस्ट्रीज अपने हरियाणा सेज प्रोजेक्ट के लिए 20 लाख रुपये प्रति एकड़ पर भूमि खरीद रही है जबकि इसकी खुले बाजार में कीमत 28 लाख रुपये प्रति एकड़ है। परन्तु उत्तर प्रदेश में ग्रेटर नोएडा में दादरी में स्थापित होने वाले सेज में परिस्थिति और भी खराब है जहां किसानों को भूमि 10–12 लाख रुपए प्रति एकड़ के हिसाब से बेचनी पड़ रही है, जबकि इसका औसत बाजार मूल्य 25 लाख प्रति एकड़ है। इसका अभिप्राय यह कि किसानों को बाजार मूल्य का 40–50 प्रतिशत ही क्षतिपूर्ति के रुप में दिया जा रहा है। यह घोर अन्याय है, परन्तु अजीब बात यह है कि तथाकथित ''समाजवादी पार्टी'' ने औद्योगीकरण के नाम पर उद्योगपतियों को किसानों का शोषण करने की इजाजत दी। अतः दादरी के किसानों के विरोध को बेरहमी से कुचल दिया गया और भूतपूर्व प्रधानमंत्री वी.पी.सिंह को दादरी में प्रवेश करने नहीं दिया।

पश्चिम बंगाल में माकपा सरकार ने उद्योगपतियों की ओर से भूमि अधिग्रहण एक नियमित कीमत पर करना शुरू किया जोकि बाजार कीमत से बहुत कम थी। इसने राज्य का बल प्रयोग कर सिंगूर और नन्दीग्राम के विशेष आर्थिक क्षेत्रों के

भूमि–अधिग्रहण के लिए किसानों को मजबूत किया जिसके परिणामस्वरुप जबरदस्त विरोध हुआ और सरकार पीछे हटने के लिए मजबूर हो गयी। विशेष आर्थिक क्षेत्र के खिलाफ आन्दोलन ने पूरे पश्चिम बंगाल में भारी जोर पकड़ लिया और वामपंथी मोर्चे के अध्यक्ष विमान बोस ने हाल ही में यह कहा कि ''यदि यह विरोध जारी रहता है, और यदि सैद्धान्तिक आधार को और कमजोर कर दिया जाता है, तो सी.पी.एम. सदा के लिए खत्म हो जाएगी।''

माकपा को जो सबक मिला है, उसके अनुसार राज्य सरकार द्वारा औद्योगीकरण के लिए अति–उत्साह दिखाने का परिणाम राजनैतिक तीखी प्रतिक्रिया हो सकती है जिससे माकपा के अस्तित्व को खतरा हो सकता है। चूंकि सिंगूर और नन्दीग्राम में आन्दोलन के पीछे मुख्य बल बरगरदार थे, अतः माकपा सरकार बरगरदारों को भू–स्वामियों के बराबर रखने के लिए नये फार्मूले पर विचार कर रही है।

आज, भू–स्वामियों को 75 प्रतिशत क्षतिपूर्ति मिलती है और बरगरदारों को केवल 25 प्रतिशत। इसके कारण बरगरदारों में भारी रोष है क्योंकि बरगरदार भूमि की काश्त करते हैं और इन्हें फसल का 75 प्रतिशत प्राप्त होता है जबकि भू–स्वामियों को 5 प्रतिशत मिलता है। सरकार एक फार्मूले पर विचार कर रही है, जिसमें बरगरदारों को क्षतिपूर्ति 75 प्रतिशत देकर भू–स्वामियों के बराबर लाया जाए। दूसरे शब्दों में क्षतिपूर्ति 150 प्रतिशत होगी। इसमें से 5 प्रतिशत अतिरिक्त भार राज्य सरकार सहन करेगी और शेष 25 प्रतिशत औद्योगिक घराने को सहन करना होगा। चाहे इस नये फार्मूले को भले ही अन्तिम रुप नहीं दिया गया, फिर भी माकपा यह उम्मीद रखती है कि यदि औद्योगिक घराने क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त भार को सहन करने के लिए राजी हो जाते हैं, तब सरकार विपक्ष के बदलाव से हवा निकाल देगी।

यदि विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए न्यूनतम मात्रा में भूमि की आवश्यकता के लिए भूमि–अधिग्रहण अनिवार्य हो जाता है, तो एक फसल वाली भूमि अधिग्रहित की जानी चाहिए और दोहरीय, बहु–फसल वाली भूमि कुल आवश्यक क्षेत्र के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

सिंगूर और नन्दीग्राम में भारी विरोध का असर महाराष्ट्र, उड़ीसा, हरियाणा आदि में पड़ा क्योंकि किसान औद्योगिक घरानों और विकासकों द्वारा अपने शोषण के बारे में सजग हो गए हैं। अतः इस कारण वे भूमि छोड़ने से इन्कार करते हैं और जबरन अधिग्रहण का कड़ा विरोध करते हैं। उड़ीसा की सरकार ने पास्को को सूचित कर दिया है कि वह पास्को के इस्पात प्रोजेक्ट के लिए किसानों को अपनी भूमि छोड़ने के लिए मजबूर नहीं करेगी। भूमि–अधिग्रहण का दायित्व अब पास्को पर होगा और पास्को के अधिकारियों को पुनर्वास और उन्हें फिर बसाने के पैकेज के बारे में सूचित करना होगा और किसानों को अपनी इच्छा से भूमि छोड़ने के लिए राजी करना होगा।

महा मुम्बई सेज का निर्माण 11,696 हैक्टेयर या लगभग 29,000 एकड़ में होना है और इस प्रोजैक्ट के कारण 45 ग्रामों से एक लाख व्यक्तियों का विस्थापन होगा। अन्य स्थानों पर विरोध से सजग होकर जिन व्यक्तियों का विस्थापन होगा, उन्होंने विशेष अधिकार क्षेत्र पर गठित संसदीय पैनल के सामने अपना विरोध और पक्ष भी रखा।

सेज, पुनर्वास पर सहमति के बिन्दु

सेज के लिए भूमि अधिग्रहण पर विवाद और इसके लिए विभिन्न स्तरों पर की गयी चर्चाओं के परिणामस्वरुप निम्नलिखित बातें उभरी हैं :

राज्य को विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए बंजर और व्यर्थ भूमि को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। चाहे औद्योगिक घराने बड़े नगरों के आसपास भूमि प्राप्त करने को तरजीह देंगे क्योंकि वहां आधारसंरचना विकसित है, नीति की दृष्टि से यह बेहतर होगा कि व्यर्थभूमियों का प्रयोग किया जाए और अधिग्रहण की लागत कम की जाए और बंजर और व्यर्थभूमि में आधारसंरचना का विकास किया जाए। आखिर जमशेदजी टाटा ने टेलको और टिस्को को एक बंजर और आवास–रहित क्षेत्र में ही विकसित किया था।

यदि विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए न्यूनतम मात्रा में भूमि की आवश्यकता के लिए भूमि–अधिग्रहण अनिवार्य हो जाता है, तो एक फसल वाली भूमि अधिग्रहित की जानी चाहिए और दोहरीय, बहु–फसल वाली भूमि कुल आवश्यक क्षेत्र के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रत्येक विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए आवश्यक क्षेत्रफल की पुनः समीक्षा होनी चाहिए और कम–से–कम 50 प्रतिशत औद्योगिक उद्देश्य के लिए तय किया जाना चाहिए और शेष अन्य उद्देश्यों के लिए, इसकी अपेक्षा कि केवल 25 प्रतिशत क्षेत्रफल औद्योगिक उद्देश्यों के लिए तय किया जाए। यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो विशेष आर्थिक क्षेत्र चोर दरवाजे से भूमि हड़प करने की योजना बन जाती है। श्री अरविंद कुमार, आई.टी. सचिव, महाराष्ट्र सरकार ने साफ शब्दों में कहा : ''विशेष आर्थिक क्षेत्र उच्च वर्गों द्वारा आधि

श्री अरविंद कुमार, आई.टी. सचिव, महाराष्ट्र सरकार ने साफ शब्दों में कहा : ''विशेष आर्थिक क्षेत्र उच्च वर्गों द्वारा आधिक सम्पत्ति हथियाने का हथियार बन गए हैं और इन्हें समाप्त कर देना चाहिए। भूमि हथियाने के ऐसे व्यवहार देश के लिए शुभ संकेत नहीं हैं और इन्हें बन्द कर देना चाहिए।''

ाक सम्पत्ति हथियाने का हथियार बन गए हैं और इन्हें समाप्त कर देना चाहिए। भूमि हथियाने के ऐसे व्यवहार देश के लिए शुभ संकेत नहीं हैं और इन्हें बन्द कर देना चाहिए।''

भूमि के स्वामियों को क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त, विशेष आर्थिक क्षेत्र के आसपास छोटे भूमि के प्लॉट दे देने चाहिए ताकि जब यह क्षेत्र औद्योगिक केन्द्र के रुप में विकसित हो, तो यह मरम्मत और रखरखाव के लिए सहायक वर्कशाप कायम कर सकें या कोई सहायक इकाई या सेवाएं सेज–क्षेत्र के पास कायम कर सकें। अतः बाद में जिन लोगों ने अपनी भूमि का त्याग किया, उन्हें आय का प्रवाह प्राप्त हो सके।

यदि उद्योग द्वारा विस्थापित व्यक्तियों को भूमि के प्लॉट नहीं दिए जा सकते, तो औद्योगिक घरानों के लिए यह अनिर्वाय होना चाहिए कि वे परिवार के कम–से–कम एक सदस्य को प्रशिक्षण दें और उसे उद्योग में नौकरी दें ताकि आजीविका की हानि को महत्वपूर्ण रुप से कम किया जा सके। अतः विकल्प के रुप में, विस्थापित किसानों और फसल–सहभाजकों को औद्योगिक फर्म में हिस्से दिए जाएं जिनको वे 20–30 साल तक बेच न सकें क्योंकि उद्देश्य तो यह है कि विस्थापितों को दीर्घकाल के लिए लाभ प्रदान किया जाए।

सभी प्रकार के व्यवसायों को विशेष आर्थिक क्षेत्र में कर–रियायतें देना न्यायोचित नहीं है। इससे, वित्त मंत्रालय के अनुमान के अनुसार 1,60,000 करोड़ रुपये की राजस्व हानि होगी। इसके अतिरिक्त, देश में सेज–कम्पनियों और गैर–सेज कम्पनियों में विभाजन हो जाएगा और गैर–सेज कम्पनियों का सेज क्षेत्र की ओर निवेश को परिवर्तित करना आरम्भ हो जाएगा। इससे देश में वस्तुतः निवेश में कम वृद्धि होगी, चाहे सेज के समर्थक कहीं अधिक वृद्धि का दावा करते रहें। इस सम्बन्ध में गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने सुझाव दिया है कि सेज में केवल केन्द्रीय महत्त्व की क्रियाओं को कर–रियायतें दी जानी चाहिए। अन्य सभी सेवाओं जैसे आवास–स्थान, होटल, रेस्तरां या कर्मचारियों के लिए मनोरंजन सुविधाओं को कर–छूट प्राप्त नहीं होनी चाहिए। केवल वास्तविक जायदाद को प्रोत्साहन देना ठीक नहीं, बन्कि ठोस औद्योगिक क्रियाओं को बढ़ावा देना उचित होगा। जिससे अर्थव्यवस्था की विनिर्माण क्षमता बढ़े।

ऐसे औद्योगिक घराने जो बंजर और व्यर्थभूमि को औद्योगिक उद्देश्यों को विकसित करने के लिए सहमत हो जाते हैं, सरकार को इन्हें अतिरिक्त रियायतें देनी चाहिए और आधार संरचना के तीव्र विकास के लिए समर्थन देना चाहिए।

देश भर में, विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए भूमि–अधिग्रहण के विरुद्ध जनित विरोध के कारण केन्द्र सरकार ने सेज के नये प्रस्तावों को स्वीकृति देने पर रोक लगा दी है। 236 प्रस्ताव जिन्हें औपचारिक रुप में स्वीकृति प्रदान की गयी है, में से केवल 63 अनुसूचित किए गए हैं। शेष 173 पर रोक लगा दी गयी, इसके बावजूद कि बहुत से विकासकों ने इनके लिए मशीनरी खरीद ली थी और कर्मचारी नियुक्त कर लिए थे। विभिन्न राज्य विधान सभाओं के चुनाव को दृष्टि में रखते हुए विस्थापितों के लिए बेहतर क्षतिपूर्ति उपलब्ा कराने की नयी पुनर्वास योजना भी स्थापित कर दी है। खतरा यह है कि इसे लोकतांत्रिक झटका न सहना पड़े। यह अस्थायी और जानबूझ कर की जाने वाली देरी का कारण समझा जा सकता है। परन्तु वास्तविक मुद्दा यह है : नयी पुनर्वास नीति के मार्गदर्शी सिद्धान्त क्या होना चाहिए? राष्ट्रपति जान.एफ.कैनेडी के शब्दों में चाहे आप सरकार को प्रशासित कर रहे हों या किसी व्यापार का प्रबन्ध कर रहे हों, यह नहीं पूछिए कि किसान आपके लिए क्या कर सकते हैं, यह पूछिए कि आप किसानों के लिए क्या कर सकते हैं। इस सिद्धान्त का अनुसरण करके ही समावेशी विकास कायम किया जा सकता है जो कि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य है।

क्या सेज–नीति दोषपूर्ण है?

सेज–नीति को बढ़ावा देने के लिए अत्यधिक उत्साह की अभिव्यक्ति और उसे तीव्र औद्योगीकरण का मुख्य हथियार मानने से इसके रास्ते में भारी रुकावटें खड़ी कर दी हैं– विशेषकर पश्चिम बंगाल में, जहां मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने हजारों भू–स्वामियों, बरगारदारों और भूमिहीन मजदूरों की आजीविका को बड़ी बेदर्दी से पैरों तले रौंदने का प्रयास किया। यह उनकी आजीविका के लिए खतरा था। क्योंकि उपजाऊ बहु–फसली भूमि जो उनकी आजीविका का मुख्य स्रोत थी, उनसे छीनी जा रही थी। उनकी शिकायतों और चिन्ताओं को ध्यानपूर्वक सुनने और लोकतांत्रिक ढंग से इसका

समाधान ढूंढ़ने की अपेक्षा, माकपा सरकार ने इस विरोध को बर्बर ढंग से कुचलने का प्रयास किया। 2000 से अधिक पुलिसकर्मियों के साथ माकपा कार्यकर्ताओं (काडरों) ने मिलकर 14 मार्च 2007 को एक अभूतपूर्व हमला किया, ग्रामवासियों को पीटा गया, उनके घर जलाए गए और दमन की प्रचंड लहर चला दी ताकि जो सरकार द्वारा भूमि–अधिग्रहण का दृढ़तापूर्वक विरोध कर रहे थे, उन्हें सबक सिखाया जा सके। यह कांड नन्दीग्राम में हुआ। जैसा कि समाचारपत्रों से पता चलता है कि इसमें 14 व्यक्ति मारे गए और सैंकड़ों जख्मी हुए। पश्चिम बंगाल के गवर्नर श्रीगोपाल कृष्ण गांधी ने इसे 'शीत संत्रास' की संज्ञा दी और कुछ बातें साफ–साफ कहने का मन बनाया : ''मैंने जो कुछ यहां देखा, उससे मेरा मन दुःखी हुआ। लोग सदमें में हैं। उनका सही ढंग से इलाज नहीं हो रहा। इनमें से कुछ को तो तुरन्त कोलकाता ले जाना चाहिए।'' सामान्यतः गवर्नर ऐसी साफगोई करने से परहेज करते हैं, परन्तु नन्दीग्राम की त्रासदी इतनी घिनौनी थी, कि गवर्नर जो वामपंथी सरकार द्वारा चुना हुआ व्यक्ति था, ने सवाल उठाया : ''शक्ति प्रयोग से जो आज हम देख रहे हैं, कौन सा सार्वजनिक उद्देश्य पूरा होता है?'' कोलकाता उच्च न्यायालय ने इस घटना का स्वयं जायजा लेते हुए नन्दीग्राम की दुःखद घटनाओं की सी.बी.आई. द्वारा जांच का आदेश दिया है।

वाममोर्चा गठबंधन के सहभागियों, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, आर.एस.पी. और फारवर्ड ब्लॉक ने मुख्यमंत्री को इसके लिए दोषी ठहराया। ''मुख्यमंत्री, राज्य में मिली–जुली सरकार चलाने की अपेक्षा एक पार्टी की सरकार चला रहे हैं।'' उन्होंने नन्दीग्राम में पुलिस कार्रवाई को वामपंथी सरकार के लिए लज्जाजनक बताया। मुख्यमंत्री ने महत्त्वपूर्ण नीति सम्बन्धी निर्णयों में गठबंधन के सहभागियों

वाममोर्चा गठबंधन के सहभागियों, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, आर.एस.पी. और फारवर्ड ब्लॉक ने मुख्यमंत्री को इसके लिए दोषी ठहराया। ''मुख्यमंत्री, राज्य में मिली–जुली सरकार चलाने की अपेक्षा एक पार्टी की सरकार चला रहे हैं।'' उन्होंने नन्दीग्राम में पुलिस कार्रवाई को वामपंथी सरकार के लिए लज्जाजनक बताया।

को अंधेरे में रखा। सी.पी.आई., आर.एस.पी. और फारवर्ड ब्लॉक ने यह धमकी दी कि यदि ऐसी परिस्थिति बनी रहती है, तो वे मिली–जुली सरकार से अपना नाता तोड़ देंगे। वयोवृद्ध सी.पी.एम. नेता ज्योति बसु ने बड़े रुखे स्वर में कहा।'' जो कुछ सी.पी.आई., आर.एस.पी. और फारवर्ड ब्लॉक कह रहे हैं, सही है। मैं भी यह महसूस करता हूँ कि सी.पी.एम. राज्य में एक–पार्टी का शासन चला रहा है। यह कोई मिली–जुली सरकार नहीं लगती।'' मुख्यमंत्री को डांटते हुए, बसु ने कहा : ''किसने गोली चलाने का आदेश दिया? जो कुछ हुआ उसके लिए तुम्हें जिम्मेदारी लेनी होगी... तुम यह सरकार बड़े अहंकारी ढंग से चला रहे हो।'' गठबंधन के सहभागियों का वामपंथी सरकार पर दबाव इतना ज्यादा था कि सी.पी.एम. सरकार को झुकना पड़ा और यह घोषणा करनी पड़ी कि सभी विशेष आर्थिक क्षेत्र के प्रस्ताव रोक दिए गए हैं। यह केन्द्र सरकार द्वारा ''सामाजिक रुप में सन्तुलित'' सेज–नीति का इन्तजार करेगी।

सिंगूर और नन्दीग्राम की घटनाओं का असर अन्य राज्यों में भी महसूस होने लगा है। उड़ीसा में, सरकार ने पास्को स्टील प्लांट के लिए भूमि–अधिग्रहण करने के दायित्व से इन्कार कर दिया है और पास्को को यह कह दिया है कि वे अपने सौदे सीधे किसानों से करें। महा मुम्बई सेज में किसान रिलायंस के भूमि–अधिग्रहण के पैकेज को स्वीकार नहीं करना चाहते। इकनॉमिक टाइम्स की एक टीम द्वारा 45 गांवों का दौरा करने से यह पता चला कि जमीनी हकीकत कुछ और है। ग्रामवासियों की कुछ शिकायतें हैं। पहली, कम्पनी उनकी सबसे अच्छी भूमि पर नजर टिकाए हुए है। दूसरी, जो कीमत रिलायंस दे रही है, वह बहुत थोड़ी है। रिलायंस द्वारा 10 लाख रुपए प्रति एकड़ देने का प्रस्ताव है, परन्तु सिडको उसी भूमि के लिए 5 करोड़ रुपए देने को तैयार है। तीसरी, ये परिवार के केवल एक सदस्य को नौकरी देने का वायदा कर रहे हैं। परन्तु आज सारा परिवार, जिसमें सभी बेटे, उनकी पत्नियों और बच्चे शामिल हैं, इस भूमि से आजीविका प्राप्त कर रहे हैं। बुनियादी प्रश्न यह है, क्या सेज–नीति दोषपूर्ण है? इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि प्रभावित किसानों फसल–सहभाजकों आदि से प्राप्त प्रतिक्रिया को दृष्टि में रखते हुए इस नीति पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। बहुत सी बातें जिन पर विचार करना चाहिए, उनमें उल्लेखनीय निम्नलिखित हैं :

केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन के सांख्यिकी विवरण (2002) के अनुसार, भारत में 180 लाख हैक्टेयर व्यर्थभूमि है (अर्थात् 445 लाख एकड़) और 250 लाख हैक्टेयर (617 लाख एकड़) बंजर भूमि है। यदि दोनों को जोड़ लें, तो 430 लाख हैक्टेयर (1,062 लाख एकड़) बंजर एवं व्यर्थभूमि उपलब्ध है। अतः औद्योगीकरण के लिए काफी बड़ी मात्रा में बंजर और व्यर्थभूमि विद्यमान है। विशेष आर्थिक

चीन की अपेक्षा भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में विस्थापित परिवारों की आवाज को निर्दयता से कुचलना संभव नहीं ताकि औद्योगिक एवं व्यापारिक घरानों और विकासकों के लिए अधिक लाभ जनित करने के अवसर पैदा किए जाए सकें। 'भूमि किसकी, जो जोते उसकी' की नीति से एक दम पलटकर कर 'भूमि किसकी, जो उद्योग लगाए उसकी' देश के लिए धातक सिद्ध हो सकती है। यदि सरकार किसानों, फसल–सहाजकों और भूमिहीन मजदूरों के हितों की अनदेखी करेगी, तो देश में शान्ति का वातावरण कायम नहीं हो सकेगा जो विकास के लिए अनिवार्य है।

क्षेत्रों को बहु–फसली भूमि पर स्थापित करने की अपेक्षा, यह कहीं वांछनीय होगा कि इस उद्देश्य के लिए बंजर और व्यर्थभूमि का प्रयोग किया जाए। इससे भूमि अधिग्रहण की लागत कम हो जाएगी जिसका प्रयोग आधार संरचना के विकास के लिए किया जा सकता है। किन्तु उद्योगपतियों को बड़े शहरों और महानगरों से दूर जाना होगा, परन्तु ऐसा होना चाहिए, क्योंकि ऐसी नीति से सेज कायम करने का विरोध समाप्त हो जाएगा और इससे उद्योगों का संकेन्द्रण भी कम होगा। सरकार इसमें सहायता दे सकती है और सड़कों, बिजली, जल–संभरण आदि आधार संरचना कायम करने में अर्थसाहाय्य भी प्रदान कर सकती है।

उत्पाद शुल्क, सीमाशुल्क, सेवा कर और निगम कर से छूट के रुप में विशेष आर्थिक क्षेत्रों में भारी कर–रियायतें देने की नीति का परित्याग करना चाहिए। वित्तमंत्रालय के एक अनुमान के अनुसार इससे लगभग 1,60,000 करोड़ रुपये के कर–राजस्व की हानि होने की प्रत्याशा है। इस राशि का प्रयोग आधार संरचना के निर्माण के लिए करना चाहिए ताकि औद्योगीकरण की प्रक्रिया सुविधाजनक बन सके।

विशेष आर्थिक क्षेत्र को विदेशी क्षेत्र घोषित नहीं करना चाहिए और इन को श्रम–कानूनों के पालन से छूट नहीं देनी चाहिए। प्रश्न उठता है कि औद्योगीकरण का उद्देश्य क्या है? इसका उद्देश्य उद्योग में रोजगार बढ़ाना है ताकि कृषि पर आश्रित जन संख्या कम की जा सके। श्रम–कानूनों से छूट देने के परिणाम स्वरुप इनमें काम की अमानवीय परिस्थितियां कायम हो जाएंगी। यह किसी कल्याणकारी राज्य की नीति नहीं हो सकती जो आम आदमी के जीवन–स्तर को उन्नत करने का राग अलापने से नहीं थकता।

राज्यों ने विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए भूमि–अधिग्रहण की समस्याओं का स्वयं हल ढूंढ़ने की बजाय अब गेंद केन्द्र सरकार के पाले में फेंक दी है ताकि वह इसके बारे में 'सामाजिक रुप में संतुलित' नीति निर्माण करें। चीन की आंख मूंदकर नकल करने में कोई लाभ नहीं क्योंकि वहां तो केवल 5 विशेष आर्थिक क्षेत्र हैं, परन्तु भारत में 285 सेज कायम करने की योजना है। चीन की अपेक्षा भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में विस्थापित परिवारों की आवाज को निर्दयता से कुचलना संभव नहीं ताकि औद्योगिक एवं व्यापारिक घरानों और विकासकों के लिए अधिक लाभ जनित करने के अवसर पैदा किए जाए सकें।

- केन्द्र सरकार महाराष्ट्र, पंजाब और उत्तराखंड में हुए चुनावों में लगे धक्के से सबक सीख रही है। सेज पर मंत्रियों के समूह द्वारा निम्नलिखित नीति सम्बन्धी ढांचा अपनाने की आशा की जा सकती है।
- सरकार भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में एक बिचौलिए के रुप में दिखायी नहीं देनी चाहिए।
- औद्योगिक प्रोजैक्ट के निर्माण के लिए उर्वरक कृषि भूमियों की बजाय बंजर एवं व्यर्थभूमियों के प्रयोग पर भारी बल देना चाहिए।
- केवल भू–स्वामियों को क्षतिपूर्ति देने की अपेक्षा सरकार को विस्थापित भू–स्वामियों, फसल सहभाजक और कृषि श्रम का भी ध्यान रखना होगा।
- किसानों के साथ औद्योगीकरण के शत्रुओं जैसा व्यवहार करने की अपेक्षा एक अधिक सद्भावपूर्ण सम्बन्ध कायम करना होगा ताकि किसानों, औद्योगिक एवं व्यापारिक घरानों के साथ विकास–प्रक्रिया में उन्हें महत्त्वपूर्ण ढंग से जोड़ा जाए।

यदि कुछ भूमियों का अधिग्रहण करना अनिवार्य हो जाता है, तब विस्थापन एवं पुनर्वास पैकेज के साथ कार्यान्वयन की प्रक्रिया की सार्वजनिक रुप में घोषणा करनी होगी ताकि ऐसा एहसास हो कि सरकार प्रभावित की चिन्ताओं को ध्यान में रखे हुए है। आवश्यकता इस बात की है कि दोषपूर्ण सेज नीति में सुधार लाया जाए। ताकि देश को अशान्ति से बचाया जा सके। जिससे औद्योगीकरण प्रक्रिया के लिए समतल मार्ग प्रशस्त हो सके। 'भूमि किसकी, जो जोते उसकी' की नीति से एक दम पलटकर कर 'भूमि किसकी, जो उद्योग लगाए उसकी' देश के लिए धातक सिद्ध हो सकती है। यदि सरकार किसानों, फसल–सहाजकों और भूमिहीन मजदूरों के हितों की अनदेखी करेगी, तो देश में शान्ति का वातावरण कायम नहीं हो सकेगा जो विकास के लिए अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, उर्वरक भूमि के उद्योगों के लिए अधिकाधिक प्रयोग के कारण खाद्य सुरक्षा को भी खतरा पैदा हो सकता है। ❖

माकपा का मुखौटा नंदीग्राम के आईने में

सर्वहारा का रक्षक कहे जाने वाले माकपाईयों की सरकार एवं समर्थकों ने जनसंहार का जो कृत्य किया उससे मानवता भी शर्मशार हो गयी।

■ **महाश्वेता देवी**

मैं वृद्ध हो गई हूँ। न जाने कब चल बसूँ। लेकिन चाहती हूँ कि मेरे मरने के बाद योद्धा की मेरी पहचान रद्द हो जाए। मैंने जीवनभर कोई युद्ध किया है, तो मुख्यतः कलम से। कलम ही मेरा हथियार है और 82 वर्ष की उम्र में मुझे अंतिम भरोसा अपने हथियार पर ही है। कलम के इस हथियार से आज भी युद्ध किए जा रही हूँ। इसी के साथ नृशंसता का प्रतिवाद भी यथासाध्य कर रही हूँ, सड़क पर उतर कर। पहले भी किया है और जब तक जीवित रहूँगी करती रहूगी। नंदीग्राम में बुद्धदेव भट्टाचार्य की असामान्य 'कीर्ति' के विरुद्ध अभी हमें सड़क पर उतरना पड़ा है। इस प्रसंग पर मैं बाद में आती हूँ। पहले बुद्धदेव की असामान्य 'कीर्ति' पर।

क्या आपने टीवी पर नंदीग्राम में 14 मार्च को बुद्धदेव भट्टाचार्य की 'कीर्ति' को नहीं देखा? मैंने देखा। पूरे बंगाल ने देखा। बुद्धदेव ने 1819 के जलियांवाला बाग के डायर साहब को भी लज्जित कर दिया। माकपा की गुंडावाहिनी ने इस शताब्दी का एक नया इतिहास नंदीग्राम में लिखा। नंदीग्राम आज का जलियांवाला बाग है। नंदीग्राम ने मां, बहनों, बच्चों, भाइयों और पतियों के रक्त से स्नान किया है। टीवी चैनल पर महिलाओं और बच्चों पर गोली चलाने का दृश्य हम सबने देखा है। निरीह और निःशस्त्र महिलाओं, बच्चों, किशोरों और किसानों पर अंधाधुंध फायरिंग की गई। यह फायरिंग हत्या के उद्देश्य से की गई, क्योंकि घायलों और मृतकों के पेट, गले, छाती में गोलियां लगी हैं। कई लोगों को काटकर भी मार डाला गया। हताहतों की संख्या सरकारी आंकड़ों से बहुत ज्यादा है। नंदीग्राम में नरसंहार के बाद कई लाशें गायब कर दी गईं। नंदीग्राम में पुलिस को रोकने के लिए वहां के आम नागरिकों ने गड्ढे खोद कर रास्ते काट डाले थे। नरसंहार के बाद उन गड्ढों में लाशें डालकर ऊपर से कंक्रीट और सीमेंट से उसे पाट डाला गया। कई लाशें नदी या नहरों में या दूर जंगल में ले जाकर फेंक दी गईं। यह सारा कृत्य पुलिस और माकपा कैडरों ने मिलकर किया है। नरसंहार के बाद कई महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। कुछ स्त्री–पुरुषों के जननांग में गोली मार दी गई। वे नित्य क्रियाएं भी नहीं कर पा रहे हैं। क्षत–विक्षत जननांग लेकर क्या वे स्त्री–पुरुष सामान्य जीवन व्यतीत कर पाएंगे? स्त्रियों की इस त्रासदी और नंदीग्राम के नरसंहार के लिए बुद्धदेव जिम्मेदार हैं। वे हत्यारे हैं। नंदीग्राम के लिए आज एक ही शत्रु है और वह है बुद्धदेव सरकार।

बुद्धदेव अत्याचारी हैं, मानवाधिकार विरोधी हैं। क्या अपनी पुलिस और अपने कैडर से इतने लोगों की हत्या कराने के बाद भी बुद्धदेव मुख्यमंत्री बने रहेंगे? प्रकाश करात ने कोलकाता आकर फैसला सुनाया–हां, बने रहेंगे। बंगाल माकपा के लोग मेधा पाटकर को बाहरी कहते हैं। मैं पूछती हूँ कि जब मेधा बाहरी हैं तो क्या करात बाहरी नहीं हैं? माकपा की केन्द्रीय कमेटी के सदस्य विनय कोंगर ने पिछले महीने सार्वजनिक तौर पर कहा था कि मेधा पाटकर बाहरी हैं। उन्होंने यह भी कहा था कि मेधा और ममता नंदीग्राम जाएंगी, तो वहां के माकपा समर्थक उन्हें अपना 'पाछा' दिखाएंगे। नंदीग्राम नरसंहार के पहले मेधा पाटकर जब नंदीग्राम गई

नंदीग्राम में जिन निर्दोष लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी है, वह व्यर्थ नहीं जाएगी। उनकी शहादत से प्रेरणा ग्रहण कर सिंगूर, हरिपुर, बारूईपुर, बारासात और राजारहाट के लोग भी जमीन अधिग्रहण के विरुद्ध और ताकत के साथ युद्ध छेड़ेंगे। मैं पहले सिंगूर गई थी। यह युद्ध भी स्वाधीनता संग्राम जैसा ही है।

थीं, तो वहां विनय कोंगार की घोषणा के मुताबिक माकपा के कैडरों ने अपना पैंट खोलकर दिखाया था। नरसंहार के बाद मेधा जब गईं, तब कोई अभद्रता नहीं हो सकी, क्योंकि सीबीआई की टीम नंदीग्राम में मौजूद थी। नरसंहार के दिन जब ममता बनर्जी नंदीग्राम के करीब पहुचीं, तो उनकी गाड़ी रोककर माकपा के कैडरों ने अभद्र नारे लगाए और उन्हें वापस कोलकाता जाने को कहा। ममता दूसरे दिन नंदीग्राम पहुंच सकी थीं।

मैं दिल्ली और भारत के अन्यान्य इलाकों के वामपंथी बुद्धिजीवियों से पूछना चाहती हूँ, कि वे नंदीग्राम के नरसंहार और महिलाओं पर अत्याचार पर क्या करना चाहेंगे? उनकी राय में नंदीग्राम भारत में है या इराक में? नंदीग्राम में नरसंहार के विरुद्ध कोलकाता हाईकोर्ट व बंगाल की अन्य अदालतों के वकील स्वतः स्फूर्त ढंग से सड़क पर उतरे। वामपंथी माने जाने वाले बुद्धिजीवी लेखक, कलाकार भी सड़क पर उतरे। नरसंहार के दूसरे दिन ही धर्मतला में लेखकों, कलाकारों ने धिक्कार जुलूस निकाला। ऐसा ही धिक्कार जुलूस 17 मार्च को भी कॉलेज स्क्वॉयर में निकाला, जिसमें अपर्णा सेन, गौतम घोष, मनोज मित्र, विभास चक्रवर्ती, रुद्रप्रसाद सेनगुप्त, जया मित्र, सावंली मित्र, जय गोस्वामी, नवारुण भट्टाचार्य, कबीर सुमन, प्रतूल मुखोपाध्याय, शुभा प्रसन्न समेत एक हजार से ज्यादा लेखकों, शिल्पियों और बुद्धिजीवियों ने भाग लिया।

मैंने अवस्थ होने के बावजूद दोनों जुलूसों में हिस्सेदारी की। लेखकों की दो सभाओं में भी मैं गई। इसके अलावा 19 मार्च की धर्मतला में आयोजित जमात–ए–उलेमा–ए–हिन्द की सभा में भी मैंने भाषण किया। जैसा कि मैंने शुरू में कहा–मै जीवन की सांध्यबेला में भी बुद्धदेव भट्टाचार्य की बर्बरता के विरुद्ध युद्ध किए जा रही हूँ। नंदीग्राम के नरसंहार का प्रतिवाद किए जा रही हूँ और जनतंत्र का प्रतिवाद किए जा रही हूं और जनतंत्र में आस्था रखने वाले सभी लोगों से उम्मीद करती हूँ कि वे भी मेरी आवाज से आवाज मिलाकर नारे लगाएंगे – बुद्धदेव सरकार, और नहीं दरकार।

नंदीग्राम में जिन निर्दोष लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी है, वह व्यर्थ नहीं जाएगी। उनकी शहादत से प्रेरणा ग्रहण कर सिंगूर, हरिपुर, बारूईपुर, बारासात और राजारहाट के लोग भी जमीन अधिग्रहण के विरुद्ध और ताकत के साथ युद्ध छेड़ेंगे। मैं पहले सिंगूर गई थी। यह युद्ध भी स्वाधीनता संग्राम जैसा ही है। यह लक्ष्यपूर्ति तक चलता रहेगा। सरकार का कहना है कि नंदीग्राम में प्रशासन नाम की कोई चीज नहीं थी, इसलिए वहां पुलिस गई। यह सरासर झूठ है। तथ्य यह है कि नंदीग्राम के लोग सशस्त्र नहीं थे। इसे टीवी चैनल ने दिखाया है। सशस्त्र थे माकपा के समर्थक। उन्हें एक माकपा सांसद ने हथियार उपलब्ध कराये थे। यह कहना भी गलत है कि नंदीग्राम में पुलिस नहीं जा पा रही थी। खेजुरी से तो नंदीग्राम में सब कुछ आ रहा था। खेजुरी में बैठकर ही माकपा के नेताओं ने नंदीग्राम की कार्रवाई का ब्लूप्रिंट तैयार किया था। उस ब्लू प्रिंट के अनुसार सुनियोजित तरीके से एक अफवाह फैलाई गई कि नंदीग्राम के माकपा समर्थक काकली गिरी के साथ जमीन उच्छेद प्रतिरोध कमेटी के लोगों ने बलात्कार किया। इस अफवाह के बाद ही स्थिति को नियंत्रण में करने के नाम पर पुलिस कार्रवाई का फैसला किया गया, लेकिन कार्रवाई के ठीक पहले काकली गिरी एक चैनल पर आई और उन्होंने खुलासा किया कि यह उनके खिलाफ गलत प्रचार किया जा रहा है कि उनके साथ बलात्कार हुआ। काकली ने माकपा को बेनकाब कर दिया। मुझे उम्मीद है कि सीबीआई भी दूध का दूध और पानी का पानी करेगी और माकपा का मुख और मुखौटा एक बार फिर देश देखेगा। ❖

साभार : हिन्दुस्तान

हिन्दी अखबारों की नजर में

नंदीग्राम का जनसंहार

दैनिक भास्कर

नंदीग्राम की आवाज

सड़क से संसद तक गूंजा नंदीग्राम का संग्राम

दूसरे दिन भी हिंसा, पुलिस ने की हवाई फायरिंग

हाईकोर्ट का कड़ा रुख सीबीआई जांच के आदेश

बुद्धदेव के प्रति नरम हैं भाजपा के 'लौह पुरुष'

राष्ट्रीय सहारा

नंदीग्राम में भीषण संग्राम

पुलिस ने ली 13 की जान

दैनिक जागरण

नंदीग्राम पर सरकार दबाव में, विपक्ष के तेवर उग्र

जनसत्ता

नंदीग्राम में भूमि अधिग्रहण को रोकने का फैसला

पाञ्चजन्य

नन्दीग्राम में एक पीड़ित महिला को ढांढस बंधाती श्रीमती सुषमा स्वराज और (दाएं) गांव वालों का दर्द बांटते श्री लालकृष्ण आडवाणी, श्री अनंत गीते, श्री एस.एस. अहलूवालिया व अन्य

नंदीग्राम में बुद्धदेव की पुलिस के प्रहार से घायल महिला और उसका नन्हा बेटा

राष्ट्रीय सहारा

नंदीग्राम पर सियासी घमासान

जनसत्ता

नंदीग्राम में भूमि अधिग्रहण को रोकने का फैसला

दुष्कर्म के आरोपी ने कहा माकपाइयों का था दबाव

अंग्रेजी अखबारों की नजर में

नंदीग्राम का जनसंहार

Hindustan Times

Nandigram bloodied

Killing fields: 11 die in police firing

Nandigram carnage leaves cops shaken

the pioneer

NDA seeks Kalam's healing touch for Nandigram victims

Memorandum asks President to order removal of CPM's marauding cadre

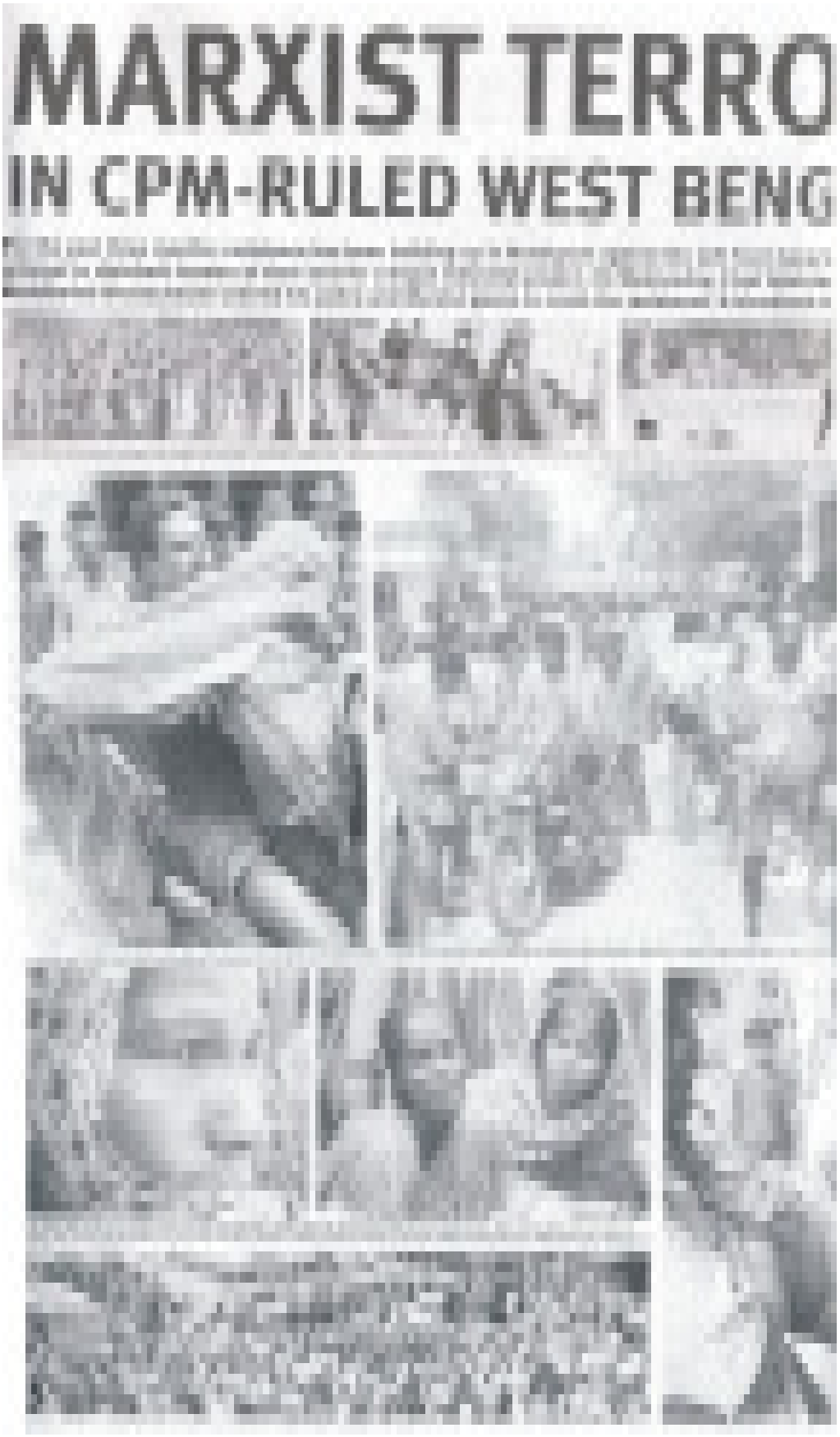
MARXIST TERRO
IN CPM-RULED WEST BENG

BETTER H

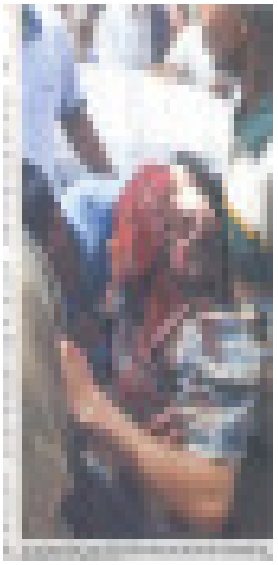

LING FIELDS

वामपंथ का दोहरा चरित्र और खूनी खेल

नंदीग्राम में एक दर्जन से अधिक गरीब - मजदूर - किसानों को मौत के घाट उतार दिया गया। सरकार उनकी जमीन, जमीर और जान का मुआवजा देकर 'सेज' संवारने में लगी हुई है।

■ **राकेश सिन्हा***

किसी भी सभ्य व्यक्ति के लिए राजनीतिक विश्लेषण में असभ्य भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, यह मेरी मान्यता रही है। परंतु पिछले कुछ महीनों से पश्चिम बंगाल में कम्युनिस्टों के द्वारा जिस बर्बरता, क्रूरता एवं राक्षसी वृत्ति का प्रदर्शन हो रहा है, उसे देखकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और सत्ता में उसके तीन सहयोगी पिछलग्गुओं (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी और फारवर्ड ब्लॉक) के लिए 'दोगले' जैसे शब्द का प्रयोग भी, उनका सम्मान करने जैसा लगने लगा है। 15 मार्च को नंदीग्राम में एक दर्जन से अधिक गरीब–मजदूर–किसानों को मौत के घाट उतार दिया गया। सरकार उनकी जमीन, जमीर और जान का मुआवजा देकर 'सेज' संवारने में लगी हुई है। सिंगूर और नंदीग्राम में लगातार हिंसा का तांडव हो रहा है। किसानों – मजदूरों का हक क्या है? यह जानने का एकाधिकार तो कम्युनिस्टों ने अपने लिए सुरक्षित रखा है। वे अपने आप को सर्वहारा का सिपाही कहते रहे हैं। उन्हीं के नाम पर राजनीति की रोटी सेंकते रहे हैं। और जब सर्वहारा वर्ग अपने न्यूनतम अधिकारों के लिए संघर्ष पर उतरने लगा तब कम्युनिस्ट शासन ने अपनी असली चाल, चेहरा और चरित्र दिखा दिया।

बुद्धदेव भट्टाचार्य या उनकी पार्टी के लिए नैतिकता की बात करना मूर्खता होगी। इसलिए यह अपेक्षा करना कि इतने गरीब किसानों की मौत के बाद बुद्धदेव इस्तीफा दे देंगे, दोपहर की धूप में आसमान में आरे खोजने के समान होगा। संभवतः कम्युनिस्टों से कहीं अधिक संवेदनशीलता तो टाटा और सलेम ग्रुप में होगी। उनसे एक बार तो अपेक्षा की जा सकती है कि वे एक कदम पीछे हट जाएं और मजदूर–किसानों के खून से सनी धरती पर कार कारखाना या सेज का निर्माण नहीं करें। लेकिन राज्य के कम्युनिस्ट शासन से ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती।

माकपा में आज बुद्धदेव के खिलाफ बोलने वाला एक भी व्यक्ति नहीं है। किसान सभा, सीटू, एसएफआई जैसे संगठनों की जुबान हिल तो रही है लेकिन इन खूनी कारनामों का औचित्य साबित करने के लिए। मजदूरों की रोजी–रोटी छीनने और उन पर हिंसात्मक कार्रवाई में भी ये क्रांति के दर्शन कर रहे हैं। मजदूरों–किसानों की बात करते हुए शहीद हुए सफदर हाशमी की याद में बना 'सहमत' जैसा संगठन भी मौन धारण किए हुए है। सीपीआई संगठनात्मक रूप से पूरी तरह विकलांग है। इसका आत्मविश्वास खत्म हो चुका है। देश के सभी प्रांतों में 'अजय भवनों' के अतिरिक्त इसके पास कुछ नहीं बचा है – माकपा, कांग्रेस और लालू यादव जैसी बैसाखियों और मीडिया की सहानुभूति की बदौलत इसका राजनीतिक अस्तित्व दिखाई पड़ रहा है। इसलिए माकपा से असहमति जताते हुए भी यह वाम मोर्चे में बनी हुई है। और सबका एक ही रक्षा कवच है – 'हिन्दू सांप्रदायिकता का खतरा'। आरएसपी और फारवर्ड ब्लॉक अपनी औकात जानते हैं, इसलिए उनके पास 'बुद्धम शरणम गच्छामि' के सिवा कोई चारा नहीं है।

इस पूरे प्रकरण में यह अहम सवाल उभरता है कि आखिर सीपीएम का चरित्र क्या है? सीपीएम का जन्म सीपीआई में विभाजन के परिणामस्वरूप 1964 में हुआ था। सीपीआई की राष्ट्रीय परिषद के 32 सदस्यों ने भारत–चीन युद्ध पर पार्टी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को प्रतिक्रियावादी और बुर्जुवा नेतृत्व के साथ समझौता करार

*लेखक : दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं।)

दिया था। सीपीआई का मानना था कि चीन ने भारत पर आक्रमण किया। लेकिन ये 32 सदस्य, जिन्होंने सीपीएम का गठन किया, मानते थे कि माओ का नेतृत्व भारत के लिए अनुकरणीय है। वे भारत को ही भारत–चीन युद्ध के लिए दोषी मानते थे। सीपीआई के दस्तावेज (बैटल अगेंस्ट माओइज्म एंड नक्सलिज्म) में लिखा गया है – यह सीपीआई से माओवाद के प्रभाव में टूटकर अलग हुई है और इसी का अनुकरण करते हुए अपने कैडर को माओवाद की महानता स्थापित करने का प्रशिक्षण दिया है। इसी दस्तावेज में आगे कहा गया है कि सीपीएम ने सांस्कृतिक क्रांति (1967) के दौरान लोगों पर हुए अत्याचार को भी सही ठहराया है। माओ के उत्तराधिकारी ने सांस्कृतिक क्रांति के दौरान हुई बर्बरता के लिए माओ को अपराधी माना, लेकिन सीपीएम की माओभक्ति बनी रही। यह अकेली घटना नहीं है। सोवियत संघ में स्टालिन ने 1929 से 1953 तक जो बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया, उसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। स्टालिन के बाद के सोवियत नेतृत्व ने भी अपने मूल्यांकन में स्टालिन को दोषी माना, परंतु सीपीएम को यह अच्छा नहीं लगा। आखिर बर्बरता के बिना मार्क्सवाद क्या! इसलिए उसने मद्रास कांग्रेस (1992) में जारी पार्टी के दस्तावेज – ऑन सर्टेन आईडियोलॉजिकल इश्यूज, में सोवियत कम्युनिस्ट नेताओं को स्टालिन के गलत मूल्यांकन के लिए दुत्कारा। उसमें लिखा है – सीपीएम व्यक्तिवाद को ठीक करने के नाम पर अपनाए गए दृष्टिकोण को अस्वीकृत करती है। यह समाज के इतिहास का निषेध है। लेनिनवाद के पक्ष, ट्राट्स्कीवाद और अन्य सैद्धांतिक भटकाव के विरुद्ध ..... स्टालिन के निर्विवाद योगदान को इतिहास के पन्नों से नहीं मिटाया जा सकता। तीसरी घटना है चीन के

आज सीपीएम नेतृत्व सर्वहारा को छोड़कर कारपोरेट व व्यावसायिक घरानों का सिपाही हो गया है। यह विडंबना नहीं, चरित्र है। सर्वहारा विरोधी चरित्र और स्टालिनवादी चालू, माओवादी धूर्तता के साथ सीपीएम अपने नए पूंजीवादी दोस्तों के साथ रंग की नहीं खून की होली खेलने में जनहित देख रही है।

थ्येनआनमन चौक पर नागरिक अधिकारों की मांग को लेकर हो रहे विरोध प्रदर्शन को सरकार द्वारा बर्बरता से कुचल देने को भी सीपीएम समाजवादी की रक्षा के लिए उचित और साहसी कदम मानती रही है। जिस पार्टी ने अपने जन्म से ही बर्बरता का वर्ग – संघर्ष मान लिया हो, उसकी चाल, चेहरा, चरित्र कैसा होगा? सत्ता के लिए सीपीएम किसी तरह का समझौता कर सकती है। इसके लिए गांधीवाद से लेकर स्टालिनवाद और सोनिया गांधी से लेकर मुलायम सिंह तक सभी विकल्प खुले रहते हैं।

नंदीग्राम में जो हुआ वह पहली और अपवादस्वरूप घटना नहीं है। सीपीआई के ही वर्ग संघर्ष के प्रशिक्षण से नक्सलवाद का जन्म हुआ। सत्ता मिलते ही सीपीएम नक्सलवाद को अवैध वामपंथी संतान मानने लगी। सीपीआई के मुखपत्र 'न्यू एज' के 15 मई 1977 के अंक में एक आलेख छपा – 'सीपीएम्स करेंट पोस्चर' इसमें कहा गया है 'पश्चिम बंगाल में सीपीएम ने कार्रवाई दल बनाया है, जिसमें समाज विरोधी तत्वों को शामिल किया गया है। इसने सीपीआई और अन्य वामपंथी दलों के कार्यकर्ताओं पर हिंसक आक्रमण किया और उन्हें मौत के घाट उतारा।

नक्सलवादी जो सीपीएम से अलग हुए, उनके साथ भी ऐसा ही किया गया। केरल में भी सीपीएम ने अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए हिंसा और लोगों पर आक्रमण का सहारा लिया।' कम्युनिस्टों से अपेक्षा की जाती है कि वे सर्वहारा के प्रति संवेदनशील होंगे। परंतु यह संवेदनशीलता तो उनके बीच जीने और मरने में होती है। सीपीएम वाले बता दें कि अपनी स्थापना के बाद से देश भर में उन्होंने कितनी बार मजदूर – किसानों के संघर्ष का नेतृत्व किया है? इसके कितने कामरेड जेल गए हैं? सच यह है कि एक ही बार जले गए और वह भारत – चीन युद्ध के समय चीन की तरफदारी करते हुए भारतीय राज्य के खिलाफ विद्रोह करने की तैयारी के आरोप में।

आज सीपीएम नेतृत्व सर्वहारा को छोड़कर कारपोरेट व व्यावसायिक घरानों का सिपाही हो गया है। यह विडंबना नहीं, चरित्र है। सर्वहारा विरोधी चरित्र और स्टालिनवादी चालू, माओवादी धूर्तता के साथ सीपीएम अपने नए पूंजीवादी दोस्तों के साथ रंग की नहीं खून की होली खेलने में जनहित देख रही है।❖

अब भी जारी है गेहूँ संकट

कृषि मंत्री जिस प्रकार की नीतियाँ अपना रहे हैं उससे आने वाले दिनों में किसानों की समस्या बढ़ने वाली है।

■ देवेन्द्र शर्मा*

वाकया 1981 का है, तब की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की अमरीका से 15 लाख टन गेहूँ आयात करने के लिए जमकर आलोचना हुई थी। अच्छी पैदावार के बावजूद सरकार को बफर स्टॉक के लिए गेहूँ आयात करने पर विवश होना पड़ा था।

विडंबना देखिए कि 25 साल बाद सरकार को बड़े पैमाने पर गेहूँ आयात तब करना पड़ा है जब केन्द्र में सत्तासीन कांग्रेस की बागडोर उनकी बहू सोनिया गांधी के हाथ में है। 2006 में भारत ने कुल 55 लाख टन गेहूँ का आयात किया और इस तरह भारत दुनियाँ का सबसे बड़ा गेहूँ आयातक देश बन गया है।

मुझे याद है कि गेहूँ की कमी को लेकर गरमाई राजनीति से निपटने के लिए इंदिरा गांधी को कितनी जद्दोजहद करनी पड़ी थी। एक सुबह अचानक वह चंडीगढ़ पहुंची और दो मुख्यमंत्रियों, पंजाब के दरबारा सिंह और हरियाणा के भजनलाल पर इतना दबाव बनाया कि उसी शाम उनके दिल्ली पहुंचने तक दोनों राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने चेहरे लटकाए वादा किया कि गेहूँ की खरीद में आगे ढिलाई नहीं की जाएगी। दूसरे दिन ही पंजाब ने अगले साल के लिए अपना गेहूँ उत्पादन का लक्ष्य घटा दिया। यह इसलिए किया गया ताकि गेहूँ उत्पादन लक्ष्य से कम होने और मांग की पूर्ति में नाकाम रहने की स्थिति में इंदिरा गांधी की नाराजगी से बचा जा सके।

2006 में सोनिया गांधी ने उस तरह का कोई ठोस राजनीतिक कदम नहीं उठाया पर खाद्य एवं कृषि मंत्री शरद पवार की बेहिसाब गेहूँ आयात करने के लिए जमकर आलोचना हुई। वास्तविकता यह है कि गेहूँ की पैदावार में कोई कमी नहीं हुई, बल्कि गेहूँ की खरीदारी में ढिलाई के कारण हुई कमी को पूरा करने के लिए पवार ने 55 लाख टन गेहूँ आयात करने की मंजूरी दी। यही नहीं, आयात में गेहूँ की गुणवत्ता का भी ध्यान नहीं रखा गया और देश में घटिया स्तर के गेहूँ का भंडार बना दिया। गेहूँ आयात करने का निर्णय इसलिए बेतुका और आपत्तिजनक लगता है क्योंकि सरकार ने निजी कंपनियों को देश के भीतर सस्ते दरों पर गेहूँ खरीदने की इजाजत दे दी और खुद महंगे दाम पर गेहूँ का आयात कर रही है। इस वजह से केन्द्रीय पूल के लिए गेहूँ की खरीदारी कम हुई और संकट पैदा हुआ। अन्यथा गेहूँ की पैदावार कतई कम नहीं हुई थी।

ऑस्ट्रेलिया से आयातित गेहूँ की पहली खेप पिछले साल अप्रैल 2006 के अंतिम सप्ताह में पहुंची। सबसे दिलचस्प यह है कि मार्च के प्रथम सप्ताह में जब गेहूँ की कटाई शुरू हुई तो ऑस्ट्रेलियन गेहूँ बोर्ड ने भारतीय किसानों से सीधे गेहूँ की खरीदारी की। इस बोर्ड ने भारतीय किसानों से सीधे गेहूँ खरीद कर भारत को अधिक दाम पर बेचा। दूसरे शब्दों में कहें तो सरकारी विदेशी कंपनियों को तकरीबन 1100 रुपये प्रतिटन (सभी लागतों को मिलाकर) अधिक मूल्य देने को इच्छूक थी और उसी कंपनी को देश के भीतर से बहुत ही कम कीमत पर गेहूँ खरीदने की इजाजत दे डाली, जो कि 7000 रुपये प्रतिटन के आसपास था।

एक और दिलचस्प तथ्य यह है कि उत्तर प्रदेश में सक्रिय निजी कंपनियों ने 700–800 रुपये प्रति क्विंटल के हिसाब से गेहूँ की खरीदारी की। लेकिन जब महंगे दाम पर आयात किया जा रहा था, तभी उत्तर प्रदेश के कृषि मंत्री एक प्रस्ताव लेकर शरद पवार के पास पहुंचे कि वे सस्ती दर पर गेहूँ देने को तैयार हैं। इसी तरह का प्रस्ताव कुछ अन्य राज्यों से भी आया था। इसकी वजह यह थीं कि

*लेखक : कृषि व खाद्य नीति के विश्लेषक हैं।

कंपनियों के दबाव के बावजूद सरकार को अपना कदम पीछे खींचना पड़ा। और अब गेहूँ के समर्थन मूल्य पर 100 रुपये का बोनस देने की घोषणा की गई है, जिसके बाद गेहूँ का न्यूनतम समर्थन मूल्य 750 रुपये से बढ़कर 850 रुपये प्रति क्विंटल हो गया है। इसके अतिरिक्त शरद पवार ने निजी कंपनियों को चेतावनी दी है कि वह तब तक किसानों से गेहूँ नहीं खरीदेगी जब तक सरकार 15 लाख टन का भंडारण लक्ष्य पूरा नहीं कर लेती है।

निजी व्यापारियों को तकरीबन 50 लाख टन गेहूँ बेचने के लिए ग्राहकों की जरूरत थी।

जाहिर है कि गेहूँ को लेकर 1981 में जो राजनीतिक–आर्थिक समीकरण थे, उनमें आज काफी परिवर्तन आ गया है। निजी कंपनियों को गेहूँ की खरीदारी करने की छूट देना आज उदारीकरण की प्रक्रिया का हिस्सा बन गया है। एपीएमसी एक्ट में संशोधन कर वस्तु आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन की मुश्किलों को हटाकर सरकार ने वास्तव में निजी कंपनियों को किसानों से सीधे एकीकृत करने के जितने भी प्रयास किए जा रहे थे, वे किसी भी तरह से घरेलू बाजार में गेहूँ और आटा की कीमत घटाने में सहायक नहीं हो सके।

निजी कंपनियों के दबाव के बावजूद सरकार को अपना कदम पीछे खींचना पड़ा। और अब गेहूँ के समर्थन मूल्य पर 100 रुपये का बोनस देने की घोषणा की गई है, जिसके बाद गेहूँ का न्यूनतम समर्थन मूल्य 750 रुपये से बढ़कर 850 रुपये प्रति क्विंटल हो गया है। इसके अतिरिक्त शरद पवार ने निजी कंपनियों को चेतावनी दी है कि वह तब तक किसानों से गेहूँ नहीं खरीदेगी जब तक सरकार 15 लाख टन का भंडारण लक्ष्य पूरा नहीं कर लेती है।

यह सही है कि किसानों को मिलने वाला गेहूँ का समर्थन मूल्य 2006 के 650 रुपये प्रति क्विंटल से बढ़कर 850 रुपये प्रति क्विंटल हो गया, जिसे तुलनात्मक रूप से अच्छा कहा जा सकता है, लेकिन साथ ही यह भी सच है कि किसानों की शुद्ध आय अभी देश में सबसे कम है। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने सलाह दी थी कि किसानों को दिए जाने वाले समर्थन मूल्य में 50 प्रतिशत की वृद्धि की जानी चाहिए ताकि किसानों की आमदनी बेहतर हो सके। इसके बावजूद परेशान और बदहाल किसानों की पीड़ा कम करने के लिए अभी तक गंभीरता से कोई कदम नहीं उठाया गया है। सरकार कम से कम बतौर बोनस दी जाने वाली राशि को खरीद मूल्य में शामिल कर सकती थी।

हालांकि शरद पवार कहते हैं कि गेहूँ का आयात तत्कालिक संकट से निपटने के लिए किया गया है लेकिन जो नीतिगत फैसले लिए गए हैं, वे सरकारी वादों के अनुरूप नहीं हैं। सरकार ने सिर्फ अस्थायी तौर पर गेहूँ में वायदा कारोबार पर रोक लगायी है। लेकिन सरकार एपीएमसी एक्ट में किए गए उस संशोधन को वापस लेने से साफ इनकार कर चुकी है, जिसमें निजी कंपनियों को किसानों से सीधे गेहूँ खरीदने की छूट दी गई है, जो कि देश की खाद्य सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा है। दिसंबर 2007 तक डयूटी–मुक्त आयात को बढ़ाए जाने के फैसले से निष्कर्ष निकलता है कि डब्ल्यूटीओ के तहत सरकार आयात शुल्क लगाने की छूट नहीं देगी। इन सभी बातों से लगता है कि गेहूँ की खेती करने वाले किसानों को थोड़े दिनों तक जश्न मनाने का मौका मिल जाएगा। बोनस के रूप में उन तक 1500 करोड़ रुपए जरूर पहुंचेंगे लेकिन इसके बावजूद किसानों का भविष्य ठीक नहीं है। गेहूँ का आयात अब बार–बार किया जाएगा। किसानों के लिए यही वक्त है कि खतरे को पहचाने और आसन्न खतरे को गंभीरता से लें। ❖

गेहूँ की खरीद में पिछड़ रही है एफसीआई

मंडियों में गेहूं की आवक शुरू होने के बाद भी एफसीआई और सरकारी एजेंसियां लालफीताशाही के कारण एक बार फिर खरीद में पिछड़ रही हैं। निजी कंपनियों को गेहूं की खरीद से दूर रखने के लिए केन्द्र सरकार का 'स्कैनर' भी कोई काम नहीं कर रहा है क्योंकि इन कंपनियों के प्रबंधकों ने इसका जबरदस्त तोड़ निकाला है। मध्यप्रदेश की मंडियों में 11 लाख टन गेहूं बिकने के लिए पहुंच चुका है और रबी सीजन से 150 लाख टन गेहूं खरीदने का दावा करने वाले एफसीआई की स्थिति यह है कि मध्यप्रदेश में अब तक यह सरकारी एजेंसी गेहूं का एक दाना भी नहीं खरीद पाई है, जबकि यहां से आईटीसी, सुभिक्षा, कारगिल, एएलडब्ल्यू समेत कई निजी कंपनियां धडल्ले से गेहूं खरीद रही हैं। एफसीइआई व अन्य सरकारी एजेंसियां मध्य प्रदेश की मंडियों से इस कारण खरीद नहीं कर पा रही हैं कि उन्हें अब तक न्यूनतम समर्थन मूल्य 750 के ऊपर 100 रुपए बोनस देने का आदेश ही नहीं मिला है।

इन कंपिनयों ने अपना लक्ष्य तय करते हुए केन्द्र सरकार के आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत रिटर्न दाखिल करने की भी जोरदार तैयारी कर रखी है। सुभिक्षा ने इस साल रबी सीजन में 80 हजार टन, आईटीसी, कारगिल जैसी बड़ी कंपनियों ने करीब सात लाख टन गेहूं की खरीद करने का लक्ष्य तय करते हुए इस पर काम भी शुरू कर दिया है। इन कंपनियों ने रिटर्न दाखिल करने की शर्त को पूरा करने के लिए अपने प्रबंधकों की एक्सक्लुसिव टीम तैयार कर रखी है। यह टीम गेहूं खरीद के साथ ही किसानों से एक फार्म भरवा रही है और उसकी एक कॉपी सीधे राज्य व केन्द्र के संबंधित विभागों को भेज रही हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य के ऊपर 100 रुपए बोनस देने के आदेश राज्यों के खरीद केन्द्र तक नहीं पहुंच पाने के बारे में खाद्य व उपभोक्ता मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों के अनुसार बोनस देने की घोषणा के बाद वित्त मंत्रालय से वित्तीय प्रबंध को लेकर जो पत्र जारी होता है, वह अभी जारी नहीं हुआ है। संभवतः यह पत्र सोमवार को जारी होगा और इसी के साथ खरीद शुरू हो जाएगी।

श्रम-सघन उत्पादों पर आयातकर बढ़ाइये

अमीर देशों के श्रमिकों के ऊंचे वेतन खुले बाजार के कारण नहीं, बल्कि खुले बाजार को न अपनाने के कारण है।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

यूपीए सरकार ने इस वर्ष के बजट में गैर–कृषि उत्पादों पर अधिकतम आयातकर 12.5 फीसदी से घटाकर 10 फीसदी कर दिया है। सोच है कि इससे घरेलू उद्योगों की कुशलता बढ़ेगी। घरेलू उद्योगों को सस्ते आयातों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी और अपने माल की गुणवत्ता में सुधार करना होगा। घरेलू उद्योगों द्वारा विश्व स्तर के माल का उत्पादन करने से वे अगले चक्र में निर्यात् कर सकेंगे। निर्यात् में वृद्धि से देश में उत्पादन बढ़ेगा और रोजगार बनेंगे। कुशलता हासिल करने में शुरू में कठिनाई अवश्य होगी। कुछ अकुशल उद्योग बंद होंगे और उनमें कार्यरत श्रमिक बेरोजगार होंगे परन्तु अन्तिम परिणाम सुखद होंगे क्योंकि कुशल उद्योगों की स्थापना से भारी संख्या में रोजगार उत्पन्न होंगे। मारूति कार को बनाने के लिये पुर्जों का आयात सरकार ने खोल दिया था। इससे प्रीमियर और स्टैन्र्डड कम्पनियाँ बंद हो गयीं। परन्तु शीघ्र ही टाटा ने इन्डिका कार बनाई। आज मारूति, इन्डिका तथा अन्य कारों का भारत से निर्यात हो रहा है। नई कार कम्पनियों में रोजगार ज्यादा संख्या में उत्पन्न हो रहे हैं। इसी माडल को दूसरे क्षेत्रों में लागू करने के लिये वित्त मंत्री ने आयातकर में कटौती की है जो ठीक ही दिखता है।

परन्तु दक्षिणी अमरीका के बालिविया एवं मैक्सिको जैसे देशों को इस रणनीति से सुखद परिणाम नहीं मिले हैं। इन देशों में आयातों को खुली छूट देने के बावजूद वेतन न्यून बने हुये हैं और रोजगार भी कम उत्पन्न हुये हैं। कारण यह कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा में खड़े रहने के लिये उद्योगों को वेतन न्यून रखने पड़ते हैं जैसे भारत में कपड़े का निर्यात् इसलिये सफल है कि हमारे उद्यमी श्रमिकों को न्यून वेतन देते हैं। इन दिनों थाइलैंड एवं मलेशिया जैसे देशों के सामने संकट उत्पन्न हो गया है। चीन में बने कपड़े सस्ते पड़ रहे हैं क्योंकि चीन में वेतन तुलना में न्यून हैं। मजबूरन थाइलैंड को अपने मजदूरों के वेतन घटाने पड़ रहे हैं। लगभग ऐसी ही स्थिति केरल के किसानों की है। वियतनाम से सस्ती काली मिर्च उपलब्ध होने के कारण केरल की काली मिर्च के दाम घट रहे हैं और किसानों की आय कम हो रही है। बंग्लादेश जैसे देश कपड़ों का भारी मात्रा में निर्यात् कर रहे हैं, फिर भी श्रमिकों के वेतन न्यून स्तर पर बने हुये हैं। खुले बाजार का यह तार्किक परिणाम है। खुली प्रतिस्पर्धा का अर्थ न्यूनतम वेतन भी होता है। विश्व के 20 सबसे अमीर व्यक्तियों में तीन भारतीय हैं। गरीब श्रमिकों की संख्या में भी भारत अग्रणी है। उद्यमी की अमीरी और श्रमिक की गरीबी साथ–साथ चल रही है। आयातकर घटाने से यही परिणाम हासिल होगा।

प्रश्न उठता है कि अमीर देशों के श्रमिकों के वेतन उंचे क्यों हैं? अमरीका जैसे देशों ने आयातकर न्यून बना रखे हैं। बंग्लादेश एवं भारत से सस्ते कपड़े अमरीका पहुंच रहे हैं। तब अमरीकी श्रमिकों के वेतन न्यून होने चाहिये थे। भारत में सामान्य अकुशल र्कमचारी के वेतन 100 रू0 प्रतिदिन हैं जबकि अमरीका में 4000 रू0 प्रति दिन। मेरा मानना है कि अमीर देशों के श्रमिकों के उंचे वेतन खुले बाजार के कारण नहीं बल्कि खुले बाजार को न अपनाने के कारण हैं। इस कथन का स्पष्ट प्रमाण कृषि क्षेत्र में है। अमरीका

एवं यूरोप के देश अपने किसानों को भारी मात्रा में सब्सीडी दे रहे हैं जिसके कारण उनकी आय ऊंची है। भारत में ट्रैक्टर चालक को 200रू0 की दिहाड़ी मिलती है जबकि अमरीका में 5000रू0 की। इसके कारण अमरीका में सोयाबीन और कपास की उत्पादन लागत अधिक आती है। अमरीकी कृषकों को प्रतिस्पर्धा में खड़े रहने के लिये ट्रैक्टर चालक को वेतन न्यून देने होंगे। ऐसा न हो इसलिये सरकार उन्हें सब्सीडी दे रही है। यानि अमरीकी किसान के ऊँचे वेतन खुले व्यापार के सिद्धान्त के विपरीत भारी सब्सीडी देने के कारण हैं।

अमीर देशों द्वारा पेटेंट कानूनों को डब्लूटीओ में सम्मिलित कराना भी खुले बाजार के नियम के विपरीत है। खुले बाजार में उद्यमी को छूट होती है कि दूसरे द्वारा बनाये गये माल की नकल करे जैसे दिल्ली के एक फर्नीचर निर्माता ने बताया कि वे चीन से आयातित माल की नकल करते हैं। नकल करने के इस अधिकार को पेटेंट कानून द्वारा रोका जाता है जैसे माइक्रोसाफ्ट कम्पनी ने विंडोज़ की नकल पर प्रतिबन्ध लगवा रखा है। पेटेन्ट की कृत्रिम एकाधिकार की दीवार के पीछे माइक्रोसाफ्ट विन्डोज़ को महंगा बेच रही है और अपने कर्मियों को ऊँचे वेतन भुगतान कर रही है। अतः हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि अमीर देशों के श्रमिकों के उंचे वेतन खुले बाजार को अपनाने के कारण हैं। वस्तुतः उनके ऊँचे वेतन खुले बाजार को अस्वीकार करने के कारण हैं।

खुले बाजार का श्रमिक पर विपरीत प्रभाव पड़े तो भी व्यापारी के लिये लाभदायक हो सकता है। अपने श्रमिकों को न्यून वेतन देकर व्याापारी विश्व विजय कर सकता है जैसे वालमार्ट अपने श्रमिकों को न्यून वेतन देता है लेकिन विश्व के अनेक देशों को माल सप्लाई करता है।

बन्द अर्थव्यवस्था में व्यापारी और श्रमिक दोनों की हानि होती है जैसा सावियत रूस अथवा इंदिरा गांधी के नेतृत्व में भारत का हुआ। रूस में सरकारी अधिकारियों ने अकुशल उत्पादन किया जिसके कारण वह देश निर्यात् न कर सका और टूट गया। इंदिरा गांधी ने बैंकों एवं बीमा का राष्ट्रीयकरण करके प्रतिस्पर्धा को सीमित किया जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था अकुशल हो गयी और 1991 में हम संकट में पड़ गये।

अतः यूपीए सरकार की नीति व्यापारियों के लिये लाभप्रद और श्रमिकों के लिये हानिप्रद है।

इस कटु सत्य का अर्थ यह नहीं है कि खुले व्यापार को त्याग दिया जाये। चूंकि बन्द अर्थव्यवस्था में व्यापारी और श्रमिक दोनों की हानि होती है जैसा सावियत रूस अथवा इंदिरा गांधी के नेतृत्व में भारत का हुआ। रूस में सरकारी अधिकारियों ने अकुशल उत्पादन किया जिसके कारण वह देश निर्यात् न कर सका और टूट गया। इंदिरा गांधी ने बैंकों एवं बीमा का राष्ट्रीयकरण करके प्रतिस्पर्धा को सीमित किया जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था अकुशल हो गयी और 1991 में हम संकट में पड़ गये। अर्थात् श्रमिक को लाभ न मिले तो भी खुले व्यापार को अपनाना चाहिये जिससे कम से कम हमारे व्यापारी सफल हों।

मैं समझता हूं कि हमें मूल रूप से खुले व्यापार को अपनाना चाहिये ताकि हमारे उद्यमी वैश्विक गुणवत्ता का माल बनायें और विश्व विजय की ओर अग्रसर हों। साथ ही चुनिन्दा क्षेत्रों में खुले व्यापार को अस्वीकार कर देना चाहिये जैसा अमरीका ने कृषि और पेटेंट के क्षेत्रों में किया है। जिन माल के उत्पादन में ज्यादा संख्या में लोग जीवन यापन कर रहे हैं – जैसे हथकरघा एवं कृषि – उनमें भारी आयातकर लगा देना चाहिये। साथ–साथ उन्हीं क्षेत्रों में घरेलू कम्पनियों द्वारा मशीनी उत्पादन पर भी भारी एक्साइज़ ड्यूटी लगा देनी चाहिये। ऐसा करने से आम आदमी को उपलब्ध रोजगार और वेतन में वद्धि होगी जैसाकि अमरीका के किसानों के साथ हो रहा है। चुनिंदा क्षेत्रों में हम विश्व प्रतिस्पर्धा में हार जायेंगे। इस नुकसान को जन हित हासिल करने के लिये बर्दाश्त करना चाहिये। इसी प्रकार अपने प्राकृतिक संसाधनों को खुले बाजार के हवाले नहीं छोड़ना चाहिये । हमें ओपेक सरीखे निर्यातक संघ बनाने चाहिये। जिस प्रकार अमरीका आधुनिक तकनीकों पर अपने अधिकार का उपयोग करके विन्डोज़ साफ्ट वेयर के उंचे मूल्य वसूल कर रहा है उसी प्रकार हमें अपने लोहे और मैंगनीज खनिज पर एकाधिकार का उपयोग करके उंचे मूल्य वसूल करने चाहिये। वित्त मंत्री द्वारा आयातकर घटाना मूल रूप से सही दिशा है, किन्तु श्रम सघन उत्पादों एवं प्राकृतिक संसाधनों को इस नीति से बाहर रखना चाहिये। ❖

चुनाव पर टिकी है बजट की नजर

कांग्रेस और महंगाई पर्यायवाची शब्द बन गए हैं। जनता को भी समझ आ गया है कि बजट आम आदमी के साथ धोखाधड़ी का दस्तावेज है।

■ **डॉ. सूर्यप्रकाश अग्रवाल**

देश की अर्थव्यवस्था इस समय विश्व प्रसिद्ध तीन अर्थशास्त्रियों के दिशा निर्देश में चल रही है। प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह, वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम् व योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंनटेक सिंह आलुवालिया। इनमें से वित्त मंत्री को देश के संवैधानिक रस्मोरिवाज के अनुसार प्रत्येक आगामी वित्त वर्ष के लिए 28 फरवरी को लोकसभा अर्थात देश की जनता के सामने देश की आय–व्यय का प्रपत्र अर्थात बजट प्रस्तुत करना होता है। वर्तमान लोकसभा में वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम् ने अपना तीसरा बजट प्रस्तुत किया जिसमें वे भारत देश की अर्थव्यवस्था में सुधार व मजबूती के स्थान पर अपने राजनीतिक दल कांग्रेस को बचाते हुए देखे गये। उत्तरांचल व पंजाब के बाद दिल्ली नगर निगम में कांग्रेस की राजनीतिक पराजय देश ने देखी, जिससे कांग्रेस की कर्त्ताधरता श्रीमती सोनिया गांधी जी की रात की नींद उड़ गयी तथा मणिपुर ने उनके जख्मों पर जरा सा मरहम लगाया परन्तु इन तीन राज्यों से कहीं अधिक राजनीतिक ताकतवर उत्तर प्रदेश के चुनाव उन्हें मुश्किल में डाल सकते हैं। इसलिए वित्त मंत्री की यह मजबूरी बन गई कि वे आम आदमी –आम आदमी का रोना रोते हुए आम आदमी के स्तर पर विफल होती तीन दिग्गज अर्थशास्त्रियों की आर्थिक व मौद्रिक नीतियों की सफलता का राग अलापे। हालांकि आम आदमी सब जानता हैं क्योंकि उसकी दाल–रोटी बढती मंहगाई ने छीन ली है, उसके सिर पर से छत बैंकों के आवासीय़ ऋणों पर बढ़ते ब्याज ने उड़ा दी तथा रसोई का स्टील का चूल्हा गैस सिलैंण्डरों के लिए लगती लम्बी लाइनों के कारण न केवल समय पर जल पाता है बल्कि वह बुझने के कगार पर है। कहने वाले कह रहे हैं कि आम आदमी ने ऐसी आर्थिक त्राहि इससे पूर्व कभी नहीं देखी थी।

दाल, रोटी व प्याज की मंहगाई को वित्त मंत्री करों में कटौती करके व अन्य वित्तीय उपाय करके कम कर सकते थे परन्तु पैट्रोल, डीजल, रसायन, धातु पर कर की छूट दी गई। वित्त मंत्री कांग्रेस को बचाने के भंयकर दबाब में थे क्योंकि मंहगाई रोकने का कोई उपाय कारगर नहीं हो रहा है, ऊपर से राज्यों में लगातार होते चुनाव सर पर खडे रहते हैं। दूसरी तरफ गठबंधन की राजनीति में सत्ता सुख भोग रहे वाम दलों ने डण्डा थाम लिया है। पंजाब व उत्तरांचल (उत्तराखण्ड) में तो कांग्रेस ने पराजय स्वीकार कर ली परन्तु उत्तर प्रदेश में यदि कांग्रेस को बढती मंहगाई के कारण पराजय मिलती है तो उसके परिणाम कांग्रेस को राष्ट्रीय राजनीति में भी भुगतने पड़ेंगे। इन सबके परिपेक्ष्य में वित्त मंत्री मुद्रास्फीति घटाने का बजट ही प्रस्तुत नहीं कर सके। अर्थशास्त्रियों के अनुसार मुद्रास्फीति का प्रमुख कारण देश की मौद्रिक गतिविधियां होती हैं। आयात कर को 12.5 प्रतिशत से कम करके 10 प्रतिशत करने से व विभिन्न वस्तुओं पर एक्साइज डयूटी में बिना सोचे समझे कटौती करने से आम आदमी को दाल, रोटी मिल सकेगी इसमें सन्देह है। वित्त मंत्री सेवा कर में वृद्धि की हिम्मत नहीं दिखा पाये। सीमेण्ट, स्टील, कार पर एक्साइज डयूटी पर कटौती की गई, जिसका जबाब सीमेण्ट उत्पादकों ने प्रति बोरी दाम बढ़ा कर दिया। सीमेण्ट में कालाबाजारी उसके दो तरीके की कर प्रणाली से रुक नहीं पा रही है। 190 रुपये से अधिक की लागत वाली सीमेण्ट की बोरी पर अधिक दर से एक्साइज डयूटी है जबकि इससे कम लागत की बोरी पर

कम दर से एक्साइज डयूटी लगाई जाती है जिससे सीमेण्ट निर्माता राख बगैरा मिलाकर प्रति बोरी सीमेण्ट की लागत कम करके कर प्रणाली का लाभ उठाकर उपभोक्ता व सरकार को चूना लगा देते हैं। कुत्ते के खाने के बिस्किुटों के दाम कम करके अमीर आदमी को कुत्ता पालने के लिए प्रोत्साहित किया गया जबकि आम आदमी के मूंह पर तमाचा लगाया गया कि वे मंहगे बिस्किुट व रोटी खायें।

वित्त मंत्री द्वारा 28 फरवरी 2007 को दिये अपने बजटीय भाषण में भारत के गांवों के विकास व शिक्षा पर वित्त मंत्री का ध्यान सबसे अधिक था। उन्होंने ग्रामीण आधारभूत संरचना की योजनाओं पर 31.6 प्रतिशत की दर से वृद्धि कर दी, शिक्षा पर 35 प्रतिशत तथा स्वास्थ्य पर 22 प्रतिशत की दर से वृद्धि की गई। 1.3 करोड बच्चों को प्राथमिक स्कूलों में बचाने के लिए प्राथमिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया। दो लाख अध्यापकों की भर्ती, 5 लाख से ज्यादा स्कूलों के कमरे, एक लाख से ज्यादा वार्षिक छात्रवृतियां, 10,671 करोड रुपये सर्वशिक्षा अभियान के लिए, 288 करोड रुपये अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए तथा 7,324 करोड रुपये मिड डे मील योजनाओं में अधिक दिये जायेंगे। 3,240 करोड रुपये कांग्रेस की आरक्षण नीतियों में पिछडे वर्ग के अतिरिक्त कोटा उपलब्ध कराने हेतु उपलब्ध कराये जायेंगे। भारत में शिक्षा का स्तर 65 प्रतिशत व बच्चों में मृत्यु दर 60 प्रति हजार है जो विश्व के कई गरीब समझे जाने वाले देशों से भी ज्यादा है। सरकारी स्कूलों की दशा की दयनीय और बिगडी हालत को देखते हुए थोडा भी ज्यादा व्यय करने की समर्थ रखने वाले मां–बाप अपनी संतानों को सरकारी स्कूलों के बजाय निजी स्कूलों में पढाना अधिक पसंद करते हैं। सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की अनुपस्थिति दर 18 प्रतिशत से 58 प्रतिशत के बीच रहती है। एक सर्वे के अनुसार कक्षा सात में पढ़ने वाले सात में से एक बालक जो ट्यूशन

केन्द्र सरकार की रोजगार गारण्टी योजना जिसको कांग्रेस बड़े गर्व से अपनी योजना बताती है, में 11,300 करोड रुपये से बढाकर 12,000 करोड़ रुपये कर दी गई है। मात्र 700 करोड रुपये की वृद्धि इस योजना का भला नहीं कर सकती है। राज्य सरकारें इस योजना के 11,300 करोड रुपये ही अभी तक व्यय नहीं कर पायी हैं जिससे गरीब व आम आदमी का भला नहीं हो पाया है।

नहीं ले पाता है, अपना नाम बामुश्किल लिख पाता है। कोई भी राज्य सरकार अध्यापकों की अनुशासनहीनता पर लगाम नहीं लगा पा रही है क्योंकि उनके शक्तिशाली संघ बने हुए हैं। लाखों बच्चे अशिक्षित रहते हुए स्कूलों की कक्षाओं को उत्तीर्ण करते हुए स्कूलों से बाहर आ जाते है और देश की शिक्षित बेरोजगारी को प्रतिवर्ष बढा देते है। केन्द्र सरकार की रोजगार गारण्टी योजना जिसको कांग्रेस बड़े गर्व से अपनी योजना बताती है, में 11,300 करोड रुपये से बढाकर 12,000 करोड़ रुपये कर दी गई है। मात्र 700 करोड रुपये की वृद्धि इस योजना का भला नहीं कर सकती है। राज्य सरकारें इस योजना के 11,300 करोड रुपये ही अभी तक व्यय नहीं कर पायी हैं जिससे गरीब व आम आदमी का भला नहीं हो पाया है। भारत में ग्रामीण भारत तथा सामाजिक सेवाओं पर राज्य सरकारों का कब्जा है अर्थात केन्द्र सरकार वास्तव में ग्रामीण भारत पर शासन ही नहीं कर पाती है। 5 प्रतिशत से कम लोग केन्द्र सरकार को जानते है, वे तो मात्र राज्य सरकार को ही जानते है। इसलिए चिदम्बरम् की आम आदमी के लिए की गई इस बजटीय चिल्लपौं को भारत के गांवों में रहने वाला आम आदमी शायद ही सुन पाये। केन्द्र सरकार को राज्य सरकारों की गतिविधियो को ही प्रभावशाली तरीके से नियंत्रित करना चाहिए। आयकर दाताओं में निचले स्तर पर छूट की सीमा में 10,000 वृद्धि की तथा उसे आयकर में 980 रुपये का मात्र लाभ पंहुचाया गया है क्योंकि शिक्षा उपकर को 2 से 3 प्रतिशत बढाया गया है। मुद्रास्फीति की बढती दर के कारण यह आयकर दाता पहले ही त्रस्त है उसे कोई राहत नहीं मिली है। अतः वित्त मंत्री के कांग्रेस बचाओ इस बजटीय अभियान की फूंक निकल गई है। वित्त मंत्री को कांग्रेस के बजाय देश की अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए कदम उठाने चाहिए थे। 22 वर्ष पूर्व माननीय राजीव गांधी जी ने खुले दिल से स्वीकार किया था कि योजना के एक रुपये में मात्र 15 पैसे ही जनता के लाभकारी के पास पंहुच पाते है। दिसम्बर 2006 तक सरकार में 13 विभागों ने नौ महीनों (अप्रैल से दिसम्बर तक) में मात्र 40 प्रतिशत ही व्यय किया है अर्थात 60 प्रतिशत धन जनवरी से मार्च तक के तीन महीनों में व्यय होगा। यह तो भ्रष्टाचार की और भी खराब स्थिति हो गई जिसकी कल्पना राजीव गांधी जी भी नहीं कर पाये थे। वित्त मंत्री को इस बजट के द्वारा 9.6 प्रतिशत की मुद्रास्फीति की दर कम होकर 5.4 प्रतिशत होने की उम्मीद है परन्तु क्या यह संभव हो सकेगा? इस बजट में अनुमानित कुल घाटा 8,047 करोड रुपये होने की बात कही गई है, जिससे मुद्रस्फीति घटने के बजाय बढेगी ही। कांग्रेस व मंहगाई पर्यायवाची शब्द बन कर रह गये है। यह बात जनता को भी भली प्रकार समझ में आ गई जिससे यह बजट आम आदमी के साथ एक धोखाधडी का दस्तावेज बन कर रह गया है। ❖

अतिजनसंख्या से उपजी अव्यवस्था

जनसंख्या वृद्धि पर लगाम कसने के लिए सरकार के पास स्पष्ट नीति और दृष्टि दोनों का ही अभाव है।

■ **दीपक कुमार सेन**

किसी छोटे शहर के रेलवे स्टेशन की भीड़ या दिन ब दिन बढ़ती जमीन की कीमत। दुर्लभ होते वन्य जीव या बिजली, पानी, शिक्षा और रोटी के लिए जूझता आम नागरिक। सुबह और शाम के समय स्कूल के सामने की भीड़ भरी सड़कों पर दिन ब दिन बढ़ते नौनिहाल या बड़े शहरों की मुख्य सड़कों में आये दिन लगने वाला जाम। प्रवेश के समय विश्वविद्यालय व कॉलेजों में लगने वाली लम्बी लाइन या प्रतियोगी परीक्षाओं के फार्म के लिए लगने वाली लम्बी कतारें। शाम को शहर के चौराहों पर चाय की दुकानों में जीवन प्रत्याशा के लिए संघर्षरत युवाओं की भीड़ या एक अदद नौकरी के लिए आने वाले हजारों फार्म। मेट्रो नगरों की उपनगरीय बस सेवा में हाने वाली रेलमपेल भीड़ या ट्रेनों में जानवरों की तरह ठूंसे गये यात्री। ये कुछ परिदृश्य हैं जिनसे रुबरू होने पर हमें आये दिन अनुभव होता है कि भारत अतिजनसंख्या या यूँ कहें कि अतिजनसैलाब की समस्या से जूझ रहा है। आये दिन मुँह बाये खड़ी बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, मंहगाई और जीवन प्रत्याशा के लिए बढ़ती आपा–धापी की जड़ में कहीं न कहीं मूलतः अति जनसंख्या की समस्या ही उत्तरदायी है। अति जनसंख्या से ही निरक्षरता, कुप्रशासन, कुप्रबंधन, आंतरिक व बाह्य संसाधनों में बिखराव, उद्यमों की उपेक्षा, अनिवार्य शिक्षा का अभाव, कमजोर व्यवसाय, वाणिज्य एवम् कृषि में प्रशिक्षण का अभाव परिलक्षित हो रहा है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाले 'इंडियन जनरल ऑफ इकोनॉमिकस' में आज से 70 साल पहले 1934 में जनसंख्या की समस्या के संबंध में 8 लेख प्रकाशित हुए थे, जिनमें बड़ी शिद्दत के साथ इस समस्या के विभिन्न आयामों को उठाया था। इसी में श्री एच बी भिंडे के 'पापुलेशन प्रॉबलम' शीर्षक वाले शोधपत्र में जनसंख्या वृद्धि से विभिन्न क्षेत्रों में पड़ने वाले प्रभाव बताये गये थे –

कार्यक्षेत्र की समस्याएं

1. कार्यक्षेत्र, एकरूपता, माहौल, अकुशल कार्यक्षमता व निरीक्षण आदि।
2. आय सह संबंध की कठिनाई और मानक में परिवर्तन, मूल्यवृद्धि और मजदूरी।
3. नये उत्पादन के अनुरूप रचनात्मक का पूर्ण उपयोग नहीं हो पायेगा।
4. प्रतियोगिता में व्यक्तिगत व समूह में संघर्ष।
5. व्यवसाय में व्यक्तिगत व समूहगत सहयोग व सामंजस्य संघर्ष की ओर जायेगा।
6. लगातार प्राकृतिक श्रोतों में परिवर्तन और विद्युत उद्योगों पर निर्भरता बढ़ेगी।

पारिवारिक जीवन की समस्याएं

1. ग्रामीण संस्कृति की समाप्ति और शहरीकरण से पारिवारिक संगठन के नये आधार बनेंगे जो परिवार को संघर्ष की ओर ले जायेंगे।
2. पति–पत्नी, अभिभावक व बच्चों के संबंधों की परिभाषा बदलेगी।
3. जीवनचर्या में संघर्ष होगा और उपयोग का नया आदर्श जीवन में सभी जगह दिखाई देगा।

छोटे समूहों के संबंधों में समस्या

1. सनातन संप्रदायों का पतन और नवीन सांप्रदायिक संगठनों का विकास होगा, प्रतिदिन के जीवन में धर्मनिरपेक्ष अनुभव से संबंधों की नयी पहचान सामने आयेगी।
2. समाज व व्यक्तिगत क्षेत्र में सदाचारी की नयी परिभाषा सामने आयेगी।
3. शैक्षणिक उत्तरदायित्व घरों से बाहर विद्यालयों पर होगा।
4. व्यक्तिगत योग्यता खत्म होगी और सामाजिक या व्यावसायिक योग्यता

का विकास होगा।

वृहत स्तर पर समस्या

1. सरकारी ढांचा कार्यक्षेत्र में न सिर्फ धीमा होगा अपितु संघर्ष करेगा।
2. उत्पादन और खपत के बीच अनोखा अंतर्संबंध होगा।
3. युद्ध व शांति की समस्या उत्पन्न होगी।
4. स्थान परिवर्तन से विभिन्न धाराओं व संस्कृति का मिलन होगा, जिससे कई समस्याएं उत्पन्न होंगी।'

उक्त समस्याएं इस समय विकलाल रूप धारण कर चुकी हैं, अगर चारों ओर देखा जाये तो इस शोधपत्र में लिखे गये पूर्वानुमान वर्तमान परिपेक्ष्य में शब्दशः सही होते दिखाई दे रहे हैं। 1947 से पहले तो विद्वान विशेषज्ञों की अनदेखी करने की बात समझ में आती है मगर आजादी के बाद सभी सरकारों के मेनोफेस्टो में जनसंख्या की समस्या से निपटने का जिक्र अवश्य किया गया, मगर हकीकत में स्थिति एकदम अलग है। शायद ही किसी सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए कोई कारगर कदम उठाया हो। समस्याओं के अंबार में खड़े देश को देखकर कभी–कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस देश का शासन कोई सरकार या व्यवस्था नहीं चला रही अपितु यह देश भगवान भरोसे चल रहा है।

अगर जनसंख्या को आंकड़ें के आइने में देखा जाए तो 1901 में भारत की जनसंख्या 23.84 करोड़ थी, जिसमें लिंगानुपात 972, साक्षरता दर 5.35 प्रतिशत, जबकि जनसंख्या घनत्व 77 प्रति वर्ग किमी था। जो 1931 में 27.89 करोड़ हो गयी, जिसमें लिंगानुपात 950, साक्षरता दर 9.50 प्रतिशत, जबकि जनसंख्या घनत्व 90 प्रति वर्ग किमी जा पहुंचा और 2001 में जनसंख्या 102.01 करोड़, लिंगानुपात 933, साक्षरता दर 64. 38 और जनसंख्या घनत्व 324 तक पहुंच गया। हालांकि निरंतर जनसंख्या वृद्धि का प्रतिशत गिरा है। आंकड़ों को देखा जाए तो साक्षरता दर भले ही बढ़ी है, मगर लिंगानुपात क्रमशः गिरा है और न सिर्फ जनसंख्या बढ़ी है अपितु जनसंख्या घनत्व लगातार बढ़ा है। वहीं दूसरी ओर विश्व में जनसंख्या की वृद्धि दर 1980–1990 के बीच 1.7 प्रतिशत जो 1990–99 के बीच घटकर 1 प्रतिशत हो गयी। वहीं भारत के परिपेक्ष्य में देखा जाए तो जनसंख्या की वृद्धि दर 1971–80 में 24.70 प्रतिशत थी, जो 1991–2001 में 21.34 प्रतिशत हो गई थी। विश्व की जनसंख्या 1830 में 1 अरब थीं, जो 1930 में 2 अरब, 1960 में 3 अरब, 1975 में 4 अरब, 1987 में 5 अरब और 1999 में 6 अरब तक पहुंच गयी। युगोस्लाविया में 11 जुलाई को पांच अरबबें बच्चे का जन्म हुआ, तभी से इस दिन को विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। जीवन प्रत्याशा, शैक्षणिक उपलब्धि और क्रयशक्ति पर आधारित 174 देशों की मानव विकास रपट 2000 में जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे स्थान पर स्थित भारत को 128 वां स्थान मिला।

डॉ. राधाकमल मुकर्जी के अनुसार 'जनसंख्या, भूमि और पानी के संतुलन और जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरणीय असंतुलन बढ़ेगा। भूमि और पानी निश्चित मात्रा में है, यदि जनसंख्या की वृद्धि पर लगाम न लगायी गयी तो भविष्य भयावह हो जायेगा। गंगा के डेल्टा के बारे में उन्होंने लिखा है कि वर्षा, मौसम, कृषि और जनसंख्या घनत्व के असंतुलन से यह खतरे में पड़ जायेगा। गंगाधाटी में वनों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है और पतित पावनी गंगा का जल प्रदूषित होता जा रहा है' यह पूर्वानुमान कालांतर में सच साबित हुआ, और गंगा प्रदूषण मुक्ति अभियान चलाया गया, मगर यह लाल फीताशाही की गिरफ्त में फंसकर रह गया। अति जनसंख्या की समस्या ने प्राकृतिक संपदा को नुकसान पहुंचाया है और इसी के चलते मानवीय स्त्रोतों को नजरअंदाज किया गया है। जनसंख्या वृद्धि के प्रतिरूप में अति गरीबी, अति दुर्गति, जन्मदर व मृत्युदर में असंतुलन, महामारी, बेरोजगारी, बीमारियों की अधिकता यानि एक शब्द में कहा जाये तो जीवनयापन दिन ब दिन अधिक दूभर होता जा रहा है।

जनसंख्या की जन्मदर, मृत्युदर, कीमत, रोजगार और वर्षा से अंर्तसंबंध है। जन्मदर के सापेक्ष मृत्युदर का बढ़ाना अनिवार्य है, अगर ऐसा नहीं होता तो यह जनसंख्या वृद्धि कारक बनता है। जनसंख्या वृद्धि से महत्त्वपूर्ण है कि रोजगार का सृजन होना चाहिए। विश्व में कभी न खत्म होने वाला ब्रिटिश साम्राज्य भी अति जनसंख्या के चलते बेरोजगारी का शिकार रहा है। डॉ. एम. विश्वैश्वरैया ने अस्सी साल पहले लिखा था कि 'जनसंख्या के लिए राष्ट्रीय नीति बनायी जानी चाहिए, जिससे विज्ञान व प्रौद्योगिकी से परिचय कराया जा सके, व्यापार पद्धति में परिवर्तन हो, कृषि उत्पादन को दो गुना से तीन गुना तक दस पंद्रह वर्षों में बढ़ाया जा सके।' जनसंख्या आयोग तो बना मगर वर्तमान रहनुमाओं के पास जनसंख्या वृद्धि पर लगाम कसने के लिए स्पष्ट नीति और दूरदृष्टि का अभाव है, जो भी व्यवस्था लायी जाती है, उसे लेकर वोट बैंक की राजनीति आरंभ हो जाती है। कभी संप्रदाय विशेष तो कभी वर्ग विशेष के अधिकारों के हनन को लेकर राजपथ पर तमाशा किया जाता है। ❖

बाल श्रम में सिसकता बचपन

बाल श्रम उन्मूलन हेतु अभी तक जितने भी प्रयास सरकारी स्तर पर हुए हैं, वे प्रभावी परिवर्तन लाने में अक्षम साबित हुए हैं।

■ डॉ. जयपाल शर्मा*

हम बचपन से ही सुनते आए हैं कि आज के बच्चे कल के नेता, आज के बच्चों के कंधों पर ही देश का निर्माण एवं भविष्य निर्भर करता है। जब यही बच्चे सड़कों, होटलों, स्टेशनों, खेतों और कल–कारखानों में अपनी व अपने परिवार की भूख शान्त करने के लिए काम करते हुए दिखाई देते हैं तो मन में एक यक्ष प्रश्न कौंधता है कि जिन बच्चों का स्वयं का भविष्य अनिश्चित है, वे कच्ची उम्र में मजदूरी का बोझा ढोकर किस प्रकार ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ सभ्य नागरिक बनकर समरस और सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर पाएंगे?

इन्सानियत के लिए कलंक और प्रत्येक देश के लिए सामाजिक बुराई बन चुकी 'बाल श्रम प्रथा' बाल श्रमिकों को नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य कर रही है। अन्य समस्याओं की तरह इस अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का भी समूल उन्मूलन अत्यावश्यक हो गया है।

सर्वमान्य परिभाषा नहीं

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार अपने खेतों में या घरेलू कामों में हाथ बंटाना बाल श्रमिक की श्रेणी में नहीं आता, बल्कि वे बच्चे श्रमिकों में सम्मिलित हैं, जिनसे कम पैसों से अधिक समय तक कार्य कराया जाता है और इससे उनके स्वास्थ्य, मानसिक एवं शारीरिक विकास पर बुरा असर पड़ता है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार वे बच्चे बाल श्रमिक माने जाते हैं जो अपने निर्धन परिवार की आय बढ़ाने के लिए खेतों, दुकानों, कारखानों और घरेलू कार्यों में लगे रहते हैं तथा परिवार में एक 'आय उपार्जक सदस्य' के रूप में रह रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ (यूएनओ) के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु के श्रमिक को बाल श्रमिक माना गया है, जबकि आईएलओ द्वारा 15 वर्ष या उससे कम आयु के श्रमिक को बालश्रमिक की श्रेणी में रखा गया है। भारतीय संविधान के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वर्ग के जो बच्चे रोजगार में संलग्न हैं या पारिवारिक कर्ज अदा करते हैं और अपने शारीरिक व मानसिक विकास के लिए आवश्यक सुविधाओं से वंचित हैं, वे बाल श्रमिक की श्रेणी में आते हैं। संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे को किसी कारखाने या अन्य खतरनाक रोजगार में नियोजित नहीं किया जा सकता। बाल श्रम अधिनियम–1986 के अन्तर्गत भारत में 13 व्यवसायों और 57 खतरनाक प्रक्रियाओं में बच्चों को नियोजित करने पर प्रतिबंध लगाया गया है।

भारत में बाल श्रम

भारत में बाल श्रमिकों की संख्या के विषय में मतभेद हैं। औद्योगिक संगठनों से सम्बधित परिषद के मतानुसारं भारत में बालश्रमिकों की संख्या लगभग एक करोड़ चालीस लाख है, जबकि राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार यह संख्या लगभग तीन करोड़ है। स्वैच्छिक गैर सरकारी संगठनों के अनुसार बाल श्रमिकों की संख्या चार करोड़ से दस करोड़ तक है। राष्ट्रीय श्रम संस्थानों के अनुसार भारत में छः से चौदह वर्ष के बच्चों की संख्या लगभग बाईस करोड़ है, जिसमें से तीन करोड़ बच्चे पूर्णकालिक श्रमिक के रूप में तथा लगभग दो करोड़ बच्चे अंशकालिक श्रमिक के रूप में कार्य कर रहे हैं। विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदन के अनुसार विश्व के कुल बाल श्रमिकों (24.6 करोड़) का 26 प्रतिशत भाग (6.39) भारत में विद्यमान हैं

लेखक शिक्षा भारती विद्यालय (स्वदेशी जागरण, मंच रोहतक इकाई) हरियाणा

जिनमें दो करोड़ बंधुआ मजदूर भी सम्मिलित हैं।

राष्ट्रीय श्रम संस्थान के अनुसार फिरोजाबाद में काँच उद्योग में साठ हजार, तमिलनाडु के माचिस और पटाखा उद्योग में पचास हजार, मेघालय की खानों में बाईस हजार, केरल की पत्थर की खदानों में पन्द्रह हजार, आन्ध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश के स्लेट कारखानों में बीस हजार, आगरा और कानपुर के चमड़ा उद्योग में चालीस हजार, गुजरात के रत्न जवाहरात उद्योग में करीब बीस हजार और अलीगढ़ के ताला उद्योग में दस हजार बाल श्रमिक कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग, हौजरी उद्योग, चाय बागान, बीड़ी, हथकरघा और मत्स्य उद्योग आदि में भी बालश्रमिक कार्य कर रहे हैं। इन बाल श्रमिकों से बिना अवकाश के प्रतिदिन 15 घंटे कार्य कराया जाता है और उन्हें वयस्क श्रमिक की तुलना में आधा पारिश्रमिक दिया जाता है।

बालश्रम को बढ़ावा देने वाले घटक

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में बालश्रम को संवर्धित करने वाले अनेक सामाजिक और आर्थिक घटक विद्यमान हैं। इन कारणों में प्रमुख रूप से गरीबी, बेरोजगारी और अधिक जनसंख्या के कारण परिवारों की अल्प आय आदि निश्चित रूप से उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त निम्न कारणों की भी बाल श्रम को बढ़ावा देने में अहम् भूमिका रही है।

- निरक्षता और दूषित शिक्षा पद्धति।
- जनसंख्या वृद्धि के कारण परिवारों के पालन–पोषण में कठिनाई।
- सस्ते मजदूरों के रूप में बच्चों की सहज उपलब्धता।
- औद्योगीकरण से बढ़ते हुए कारखाने।
- वंशानुगत और परम्परागत उद्योगों में बच्चों की सक्रियता।
- परिवारों में खर्चों के अनुरूप आय न होना।

राष्ट्रीय श्रम संस्थानों के अनुसार भारत में छः से चौदह वर्ष के बच्चों की संख्या लगभग बाईस करोड़ है, जिसमें से तीन करोड़ बच्चे पूर्णकालिक श्रमिक के रूप में तथा लगभग दो करोड़ बच्चे अंशकालिक श्रमिक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

- बढ़ता हुआ शहरीकरण और उसकी चमक–दमक का दुष्प्रभाव।
- समुचित देख–रेख के अभाव में बच्चों में फैलता असंतोष।
- बच्चों में फैलती नशे इत्यादि की बुरी आदतें।

बाल श्रम उन्मूलन के उपाय

विश्व स्तर पर बाल श्रम को समाप्त करने के लिए सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) द्वारा पहल की गई। इस संगठन द्वारा विभिन्न समझौतों के माध्यम से 'बालश्रम बहुल राष्ट्रों को बालश्रम उन्मूलन के लिए वचनबद्ध किया गया है।

इन समझौतों को ध्यान में रखते हुए बालश्रम के उन्मूलन के लिए भारत सरकार ने अपने अधिनियमों में काफी बदलाव किए हैं। फिर भी इन्हें कारगर तरीके से हटाना संभव नहीं हो पाया है।

देश में बाल श्रमिकों की सतत् बढ़ती हुई संख्या और उनके शोषण को रोकने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर बाल श्रमिकों के लिए निम्न उद्योगों को खतरनाक उद्योगों की श्रेणी में रखा गया है –

- हस्तनिर्मित कालीन उद्योग, पीतल के बर्तन निर्माण उद्योग, ताला एवं चाकू उद्योग, काँच एवं चूड़ी उद्योग, स्लेट उद्योग, डायमंड पॉलिशिंग उद्योग, माचिस एवं पटाखा निर्माण उद्योग, बहुमूल्य पत्थरों, नगीनों की कटिंग, पॉलिश उद्योग आदि।

इन सभी उद्योगों में बाल श्रमिकों का शारीरिक और मानसिक शोषण किया जाता रहा है। निश्चित रूप से आज भी इन खतरनाक उद्योगों में बाल श्रम उन्मूलन के प्रावधानों का और अधिक कठोरता के साथ क्रियान्वयन करना अत्यावश्यक है।

बाल श्रम के विरुद्ध ग्लोबल मार्च के अन्तर्राष्ट्रीय समन्वयक श्री कैलाश सत्यार्थी के अदम्य साहस और सहयोग को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। 11 जनवरी 1954 को विदिशा (मध्यप्रदेश) में जन्में कैलाश सत्यार्थी दक्षिण एशिया में बाल श्रम के विरुद्ध लड़ने वाले एक ऐसे योद्धा हैं, जिन्होंने इंजीनियरिंग जैसा कमाऊ, आरामदायक, ऐश्वर्यपूर्ण और प्रतिष्ठापूर्ण पेशा बाल श्रमिकों के अधिकारों और उनकी मुक्ति के लिए त्याग दिया। श्री कैलाश सत्यार्थी 26 वर्षों के सतत् प्रयास से लगभग साठ हजार बच्चों को बंधुआ मजदूरी से मुक्त करा चुके हैं। सत्यार्थी के प्रयासों से ही भारत से निर्यात होने वाले गलीचों पर 'एगमार्क' लेबल लगाने की अनिवार्यता आरम्भ हुई है। इस लेबल का अभिप्राय है कि उस गलीचे के निर्माण में बाल श्रम का उपयोग नहीं किया गया है। श्री सत्यार्थी के सद्प्रयासों से ही आई.एल.ओ. द्वारा सन् 2002 से प्रतिवर्ष 12 जून को विश्व बाल दिवस मनाया जाता है। ❖

आइए परंपरागत ज्ञान की अदला-बदली करें

देश के पर्याप्त विकास में दलितों के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

■ **चन्द्रभान प्रसाद***

अंग्रेजी का वर्चस्व तेजी से बढ़ रहा है। अब यह किसी समुदाय विशेष तक ही सीमित नहीं है, बल्कि आज समाज का हरेक तबका अंग्रेजी शिक्षा की बदौलत अपना भाग्य बदलने की फिराक में है। भारत में अंग्रेजी शिक्षा की नींव डालने वाले लॉर्ड मैकाले की जन्मशती अक्टूबर में है। इसी बीच कुछ गैर–दलित टिप्पणीकारों ने अंग्रेजी के लिए दलितों में बढ़ती होड़ को लेकर चिंता जताई है। उनकी चिंता है कि जिस तरह से दलित अंग्रेजी को अपना रहे हैं, उससे वे अपना परंपरा ज्ञान और परंपरागत हुनर खो ही देंगे, जो सदियों में विकसित हुई है। मैं समझता हूं उनकी चिंता एकदम सही है।

इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि दलित परंपरा ज्ञान और परंपरागत हुनर में बहुत से गुण हैं। दलितों के पास जो ज्ञान और पद्धति है, वह काफी पुरानी है और यह दलितों के माध्यम से आज तक जीवित है। इन परंपराओं और पुराने ज्ञान के साथ हम सदियों से रहते आए हैं। लेकिन परिवर्तन के लिए हम अपना परंपरा ज्ञान उन गैर–दलितों में बांटना चाहेंगे, जो मानते हैं कि हमारी परंपरा और ज्ञान वाकई संजोने लायक है।

सदियों से देश के अनके इलाकों में दलित कपड़े धोने के लिए गधे के गोबर से बने साबुन का इस्तेमाल करते आए हैं। हमने गधे के गोबर से आर्गेनिक साबुन बनाने में महारत हासिल कर ली है। सबसे अच्छी बात है कि इस साबुन से सूती कपड़ों की धुलाई बहुत अच्छी होती है और साथ ही इस साबुन से हाथ भी साफ किया जाते हैं। केमिकल से साबुन बनाते समय दस्ताना पहनने की जरूरत होती है, क्योंकि केमिकल से हाथ खराब होने का डर रहता है। लेकिन गधे के गोबर से बने साबुन में इस तरह का कोई खतरा नहीं होता है, दूसरे, कपड़ों की धुलाई करना सिर्फ शारीरिक परिश्रम नहीं है, बल्कि यह एक तरह का योगासन है जिसे घाट पर जाकर देखा जा सकता है। पत्थर पर कपड़े पटकते वक्त शरीर की जो मुद्रा बनती है, वह योगा की ही मुद्रा है। कपड़ों की धुलाई की हमारी जो पद्धति है, उसमें परिवार के मर्द, औरत और बच्चे सभी सदस्य सहयोग करते हैं। इससे उनकी उत्पादकता भी बढ़ती है। धोबी समुदाय ने प्रकृति के साथ रहने की परम्परा विकसित की है। यही वजह है कि गधे के साथ भी हम बड़े गौरव के साथ रहते हैं। गधे का गोबर, जो हमारे घरों के आसपास फैला होता है, वह अगरबत्ती या रुम फ्रेशनर का काम करता है। गधे की आवाज हमारे कानों के लिए मधुर संगीत जैसी होती है।

आज दुनिया में जन संपर्क का काफी महत्त्व है। यहां तक कहा जा रहा है कि इसके बिना आज विकास करना संभव नहीं है। जिसे देखो इन दिनों अपना जन संपर्क बनाने में लगा रहता है। इस मामले में भी हम किसी से कम नहीं हैं, लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि हमें इसके लिए पीआर एजेंसी को हायर करने की जरूरत नहीं होती है। हमारे घरों की औरतें घर–घर जाकर गंदे कपड़े इकट्ठा करती हैं, उससे हमारा बहुत बढ़िया पीआर बन जाता है। माथे पर कपड़े ढोने की परंपरा के कारण हमारा शरीर भी मजबूत होता है। हमसे उस तकनीक की अदला–बदली कर लें और आप कपड़े धोएं और हम आपके बदले स्कूल में पढ़ाएंगे।

ताड़ के पेड़ पर चढ़ने की हमारी तकनीक भी मजेदार है। किसी दलित को

*लेखक : दलित चिंतक है।

> पेड़ पर चढ़ते वक्त हमारा सीना पेड़ से रगड़ता है, जिसकी वजह से यह काफी मजबूत हो जाता है। जिसके लिए हम अलग से कोई प्रोटीन नहीं लेते।

ताड़ के पेड़ पर चढ़ते हुए देखना जादू देखने जैसा है। सिर्फ एक मीटर रस्सी के सहारे चार मंजिला इमारत जितने लंबे पेड़ पर हम किसी लिफ्ट के चढ़ जाते हैं। पेड़ पर चढ़ने के लिए रस्सी बनाने की तकनीक भी कम मजेदार नहीं है। पेड़ पर चढ़ते वक्त हमारा सीना पेड़ से रगड़ता है, जिसकी वजह से यह काफी मजबूत हो जाता है। जिसके लिए हम अलग से कोई प्रोटीन नहीं लेते हमारे घरों में बच्चे को ताड़ी पिलाने की परंपरा रही है, जो प्रकृति प्रदत्त शुद्ध पेय है। ताड़ी के नशे में हमारे घर की औरतें बिना थके घंटों काम कर सकती हैं। आइए हम इस परंपरा और तकनीक की अदला–बदली कर लेते हैं। आप ताड़ उतारने वाले बन जाएं और हम भूस्वामी बन जाते हैं।

मृत पशु का चमड़ा निकालना सिर्फ ज्ञान ही नहीं, बल्कि एक शुद्ध कला भी है। रसोई में इस्तेमाल होने वाले चाकू के सहारे किसी मृत पशु की खाल एक घंटे से भी कम समय में निकाली जाती है। चमड़े को संरक्षित करने और उसे रंगने की प्रक्रिया में हम ऐसे इत्र का मजा लेते हैं, जिसे दुनिया में शायद ही किसी और ने लिया हो। सबसे बड़ी बात यह है कि जो आदमी अलग–अलग घरों से मृत गायों या पशुओं को लाता है, वही आदमी उसकी खाल भी आसानी से निकाल सकता है, और वही आदमी उसे चमड़े में तब्दील कर सकता है। इतना ही नहीं, वह उसी चमड़े से जूता भी बना लेता है और सड़क किनारे बैठकर जूता पॉलिस भी कर लेता है। यानी यह ज्ञान का पूरा पैकेज है। इस काम को करने के लिए हमें काफी सम्मान भी मिलता है। इस काम को सीखने के लिए हमें स्कूल, कॉलेज से डिग्री नहीं लेनी पड़ती है। यह ज्ञान हमें परंपरा से ही मिल जाता है। आइए इस ज्ञान की हम अदला–बदली कर लेते हैं। आप गाय की खाल निकालने वाले बन जाएं और हम सॉफ्टवेयर प्रोफेशनल बन जाते हैं। शौचालय साफ करना, गटर में डुबकी लगाने से लेकर सड़कों पर झाड़ू लगाने संबंधी ज्ञान सिर्फ हमारे पास है। मैला ढोना सिर्फ ज्ञान ही नहीं है, इसे करने में काफी आनंद मिलता है। लेकिन हम इस हुनर का पेटेंट नहीं करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि यह ज्ञान सभी को मिले और दूसरे लोग भी हमारी तरह आनंद ले सकें। आइए हम इस ज्ञान की अदला–बदली करते हैं। आप मैला ढोने वाले बन जाएं और हम व्यापारी, निर्माता बन जाते हैं। ❖

स्वास्थ्य के प्रति बढ़ता खतरा

विश्व स्वास्थ्य दिवस 7 अप्रैल को दुनिया के तमाम देशों ने स्वास्थ्य के प्रति बढ़ते खतरे पर चिंता व्यक्त की है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सभी देशों की सरकारों अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, व्यापारिक संस्थानों और समाज के सभी तबकों से अपील की है कि वे स्वास्थ्य के प्रति बढ़ रहे खतरों से निपटने के लिए तैयार रहें। विश्व स्वास्थ्य संगठन के दक्षिण पूर्वी एशिया क्षेत्र के क्षेत्रीय निदेशक डॉ. सामाली विलिश्न बंगचांग ने विश्व स्वास्थ्य दिवस के मौके पर बताया कि महामारी का रूप ले सकने वाली बीमारियां वातावरण में तेजी से हो रहे परिवर्तन, पर्यावरण में गिरावट और मानव निर्मित और प्राकृतिक आपदाएं आज वैश्विक स्वास्थ्य सुरक्षा को प्रभावित कर रही हैं। इस वर्ष 7 अप्रैल को विश्व स्वास्थ्य दिवस को दुनियाभर में अंतराष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा के रूप में मनाया गया। इस मौके पर सोमाली ने स्वास्थ्य के प्रति खतरों के बचाव के पहले चरण के उपाय बनाने की जरूरत पर जोर दिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के उपनिदेशक डॉ. क्षेत्रपाल सिंह ने चिंता व्यक्त की कि दुनियाभर में जिस तेजी के साथ औद्योगीकरण हो रहा है, उसी अनुपात में कार्बनडाईआक्साईड गैस का उत्सर्जन बढ़ रहा है। इससे तापमान में बढ़ोतरी हो रही है, जो हमारे स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए खतरे पैदा कर रहा है जो मानव जाति के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। तापमान में बढ़ोतरी के कारण नई–नई बीमारियां पैदा हो रही हैं। उन्होंने कहा कि इन बातों को ध्यान में रखते हुए केवल विकसित और विकाशील देशों में मजबूत सहयोग, एकजुटता, जन स्वास्थ्य प्रणाली और निगरानी को मजबूत बनाने के लिए सूचनाओं का आदान प्रदान इन रोगों के प्रसार को रोकने में सहायक हो सकता है।

डब्ल्यूएचओ की महानिदेशक डॉ. मारग्रेट चान ने इस मौके पर दिए अपने संदेश में कहा कि स्वास्थ्य दिवस अंतरराष्ट्रीय समुदाय के लिए अच्छा अवसर साबित होगा जब वह स्वास्थ्य और सुरक्षा की तेजी से बढ़ रही परस्पर निर्भरता के बारे में विचार के। इस दिवस का मकसद सरकारों, संगठनों और व्यापारिक संस्थाओं से आग्रह है कि वे स्वास्थ्य पर निवेश करें और एक सुरक्षित भविष्य का निर्माण करें। डॉ. चांग ने कहा कि स्वास्थ्य के लिए चुनौतियों की कोई सीमा नहीं है। आज वैश्विक व्यापार और लोगों का आवागमन जिस तेजी से बढ़ता जा रहा है उसे ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि नई किस्म की बीमारियां आसानी से एक देश से दूसरे देश में जा सकती हैं और हमारी सामूहिक सुरक्षा के लिए एक नई चुनौती बन सकती हैं।

यौन शिक्षा भारतीय सभ्यता के लिए घातक

■ चन्द्रप्रकाश सिंह

एड्स से बचाव के नाम पर यूनिसेफ एवं नारको के द्वारा विकसित किए गये यौन शिक्षा के पाठ्यक्रम को आगामी जून मास से प्रारम्भ होने वाले शैक्षणिक सत्र से प्रारम्भ कर भारत सरकार हमारी सभ्यता एवं संस्कृति को नष्ट करने का कार्य कर रही है। उक्त विचार जैन आचार्य विजयरत्न सुन्दर सूरी जी ने विश्व हिन्दू परिषद के अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष अशोक सिंहल के साथ देश के प्रमुख समस्याओं के सम्बन्ध में हुई विशेष भेंटवार्ता में व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि यौन शिक्षा, शिक्षा शब्द का व्यभिचार है। सेक्स एजूकेशन प्रोनोग्राफी से भी भयंकर है, जिसे विवाहित व्यक्ति भी देखने से परहेज करेंगे, ऐसी स्थिति में अबोध बालकों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा यह समझा जा सकता है। सेक्स एजूकेशन की पुस्तकों में ऐसे चित्र हैं जो अभिभावक देख लें तो गला घोट दें। गलत कार्यों से बचने का अन्तिम विकल्प आंखों की शर्म है उसे भी यह समाप्त कर देना चाहते हैं। किसी भी शब्द के साथ सम्पूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है।

सेक्स शब्द के साथ भी उसकी पूरी क्रिया मन में उत्पन्न हो जायेगी। ऐसी दशा में सरस्वती की उपासना के मंदिर सेक्स मंदिर बन जायेंगे। यह शिक्षा हमारे धर्म, नैतिकता, संस्कृति एवं सामाजिक जीवन चारों के विरुद्ध है। कक्षा छः में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम का एक उद्धरण देते हुए मुनि ने बताया कि छः लड़के और छः लड़कयों को एक साथ इकट्ठा कर उसमें से एक के आंख पर पट्टी बांध दी जायेगी तथा उसे शेष विद्यार्थियों को उनके अंगों को छूकर पहचाने के लिए कहा जायेगा। पहचानने के पश्चात उनके स्पर्श के अनुभवों के विषय में पूछा जायेगा। जो लोग जीवन में शादी के पश्चात भी देखने एवं पढ़ने में झिझकते हैं उसे छठी कक्षा में छात्रों को दिखाया एवं पढ़ाया जायेगा। बारहवीं कक्षा के लड़के–लड़कियों को शिक्षक स्वयं कंडोम बाटंगे, ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि छात्र अध्यापक से पूछेगा कि इसका उपयोग हमें कब और कहां करना है? क्या हमारे विद्यालय ब्रिटेन के स्कूलों की तरह हो जायेंगे जहां प्रत्येक विद्यालय में गर्भपात के केन्द्र खुले हुए हैं तथा दस हजार अविवाहित लड़कियां प्रत्येक वर्ष गर्भपात करा रही हैं। हमारी देश में ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि छात्र अभिभावक एवं शिक्षक सभी इसके विरुद्ध हैं। शिक्षक समझ नहीं पा रहे हैं कि वे इस विषय को कैसे पढ़ायेंगे।

जैन आचार्य ने आगे कहा कि हमारे समझ में नहीं आ रहा है कि सरकारी आकड़ों के अनुसार प्रत्येक वर्ष एड्स से 2 लाख लोगों की मृत्यु होती है, जबकि 6–7 लाख बच्चे डायरिया से मरते हैं, 5. 5 लाख कन्या भ्रूण की हत्यायें हर वर्ष होती हैं, तम्बाकू से 9 लाख लोग मारे जाते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य रोगों से लाखों लोग मारे जाते हैं। फिर सरकार एड्स को लेकर ही इतना क्यों परेशान है। यदि एड्स पर नियंत्रण करना ही है तो हमें शादी के पूर्व हनुमान तथा शादी के पश्चात् श्रीराम के चरित्र को अपनाने की शिक्षा देनी चाहिए। शादी के पूर्व ब्रह्मचर्य तथा शादी के पश्चात मर्यादा युक्त जीवन की शिक्षा ही एड्स के प्रसार को रोक सकती है। मर्यादा युक्त जीवन ही समाज की उन्नति कर सकता है। इस देश के लोगों को राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम चाहिए बिल क्लिंटन नहीं।

आचार्य जी ने कहा कि यह एक ऐसा मुद्दा है जो हिन्दू, ईसाई और मुसलमान सबके लिए समान रूप से घातक है। इसलिए सभी को इस मुद्दे पर एक साथ आना पड़ेगा। उन्होंने बताया कि गुजरात एवं मध्यप्रदेश की सरकारों ने अपने यहां यौन शिक्षा को लागू न करने का निश्चय किया है।

श्री अशोक सिंहल ने कहा कि एड्स के विषय में बड़ा भारी प्रचार किया जा रहा है। भ्रामक आंकड़े प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इसके विषय में मैं राष्ट्रपति से मिला था तथा उन्हें बताया था कि इसके पीछे बाजार की शक्तियां कार्य कर रही हैं, जो इसके माध्यम से अपनी औषधि एवं अन्य वस्तुओं का वितरण करना चाहती हैं। यह प्रश्न उठता है कि ये एड्स के आकड़े कहां से आए और कैसे आए? अफ्रीका में एड्स के नाम पर दवा बेचकर लाखों लोगों की हत्या की गयी। उनका उद्देश्य वहां की भूमि पर कब्जा करना है। एड्स के नाम पर करोड़ों रुपया अपने देश में धर्मांतरण के लिए आ रहा है। श्री सिंहल ने कहा कि यह चिन्ता का विषय है कि स्वतंत्रता के पश्चात भी हमारे देश की सभी नीतियां पश्चिम से बनकर आती हैं।

प्रश्न उठता है कि हमारे देश के बौद्धिक लोग क्या कर रहे है? वे इस दिशा में शून्य हैं। उन्हें बैठकर इस विषय पर चर्चा करनी चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि यह हमारे देश में नहीं चलेगा। समाज के संगठन द्वारा ही ऐसे दुष्कृत्यों को रोका जा सकता है। राजनैतिक क्षेत्र के प्रति निराशा करते हुए उन्होंने कहा कि राजनैतिक क्षेत्र में अच्छे गुण एवं चरित्र के लोगों का अभाव होता जा रहा है।

अन्ततः यह निर्णय लिया गया कि देश के प्रमुख साधु–संतों के साथ सभी समुदाय के मूर्धन्य लोगों का एक प्रतिनिधि मंडल राष्ट्रपति महोदय से मिलकर इस विषय में हस्तक्षेप करने की मांग करेगा। ❖

खुदरा बाजार को विदेशियों से खतरा

मेहनत मजदूरी सब कुछ हमारा होगा लेकिन भारत की कंपनियों पर और हमारी सम्पत्ति पर कब्जा विदेशियों का होगा।

■ **मोहन गुरुस्वामी**

वॉलमार्ट नाम की खुदरा व्यवसाय की जिस बड़ी कंपनी का इन दिनों बड़ा खौफ है, उसके मालिक सैम वाल्टन ने कोई छह दशक पहले बिल क्लिंटन के गांव में एक छोटा सा डिपार्टमेंटल स्टोर खोला था। सबसे कम दाम का उनका नारा ऐसा चला कि वे उत्पादकों पर राज करने लगे। ऐसा भी कह सकते हैं कि जो लोग बड़ी–बड़ी मशीनें लगाकर चीजें बनाते हैं, उन्हें सैम वाल्टन ने अपना गुलाम बना डाला। वॉलमार्ट की हैसियत को समझने के लिए इतना ही काफी है कि उसका टर्नओवर 256 अरब डॉलर से ज्यादा है। दो साल पहले ही उसका सकल लाभ 9 हजार करोड़ डॉलर पहुंच चुका था। अगर उसकी दुकानों की संख्या की बात करें, तो ये करीब 5 हजार के आसपास बैठेंगी और दुकानें भी इतनी विशाल कि उनमें सब कुछ मिल जाए। इसलिए जब वॉलमार्ट की चर्चा की जाए, तो उसे एक सम्पूर्ण बाजार के रूप में देखा जाना चाहिए। वॉलमार्ट की इतनी चर्चा इसलिए है, क्योंकि भारत में जिन उद्योगपतियों ने खुदरा व्यवसाय में हाथ डाला है या फिर इसमें आने को हैं, वे उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। वैसे भी भेड़चाल के चलते इस खुदरा व्यवसाय में कूदे तमाम–उद्योगपति असली दौड़ शुरू होने तक इस क्षेत्र से भाग खड़े होंगे। बड़ी विदेशी कंपनियों के आने पर बमुश्किल तीन–चार देशी कंपनियां ही खुदरा बाजार में दिखाई पड़ेंगी और उनमें भी कुछ तो विदेशी हाथों से ही संचालित हो रही होंगी।

भारत में रहनेवाले जो लोग तर्क दे रहे हैं कि वॉलमार्ट सरीखी कंपनियों के आने से हमारे किसान को अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रवेश मिलेगा, वे गलत फहमी में हैं। इस हकीकत को समझ लेना चाहिए कि वॉलमार्ट का इरादा महज चीन के सस्ते माल को ही भारत में टिकाने का है। वह अधिकांश सामान चीन से (30 अरब डॉलर) ही खरीदता है। अगर भारतीय परिप्रेक्ष्य में देंखें, तो उसके पैर यहां पड़ने से बनारस के सिल्क उद्योग के सामने भी मुश्किलें आ सकती हैं, क्योंकि वॉलमार्ट के पास भारत के बाजार में खपाने के लिए चीन का बेहद सस्ता सिल्क उपलब्ध है। वॉलमार्ट जैसी कंपनियों के विरोध के पीछे अन्य देशों का खराब अनुभव भी काम कर रहा है। अगर इतिहास पर नजर डालें, तो अमरीका और यूरोप का अनुभव बताता है कि बड़ी खुदरा कंपनियों ने छोटे दुकानदारों की आजीविका को न सिर्फ बहुत नुकसान पहुंचाया बल्कि उन्हें निगल भी लिया है।

बड़ी खुदरा कंपनियों के बाजार में आने से उन लोगों को निहायत कम तनख्वाह पर इनके यहां काम करने को मजबूर होना पड़ सकता है जो कभी खुद छोटे खुदरा दुकानदार हुआ करते थे। इसका अर्थ है कि आज भारतीय के जो खुदरा दुकानदार हैं, वे वॉलमार्ट के यहां ऐसे नौकरी करते दिखेंगे, जैसे उनके यहां मजदूरी कर रहे हों। चीन का उदाहरण हर किसी के सामने है, वह खुद इस दौर से गुजर रहा है। वहां मानवाधिकारों की अधिक परवाह नहीं की जाती, शायद इसी वजह से चीन की बड़ी खुदरा दुकनों पर काम करने वाले लोग काफी खराब स्थिति में गुजारा करने

बड़ी खुदरा कंपनियों के बाजार में आने से उन लोगों को निहायत कम तनख्वाह पर इनके यहां काम करने को मजबूर होना पड़ सकता है जो कभी खुद छोटे खुदरा दुकानदार हुआ करते थे। इसका अर्थ है कि आज भारतीय के जो खुदरा दुकानदार हैं, वे वॉलमार्ट के यहां ऐसे नौकरी करते दिखेंगे, जैसे उनके यहां मजदूरी कर रहे हों। चीन का उदाहरण हर किसी के सामने है, वह खुद इस दौर से गुजर रहा है। वहां मानवाधिकारों की अधिक परवाह नहीं की जाती, शायद इसी वजह से चीन की बड़ी खुदरा दुकनों पर काम करने वाले लोग काफी खराब स्थिति में गुजारा करने को विवश हैं।

को विवश हैं। इस कटु सच्चाई पर भी सभी को जरूर गौर करना चाहिए कि सामाजिक सुरक्षा के अभाव में 'एक बड़ा मध्यस्थ' लाखों छोटे परचूनियों (यानी भारत के गली–नुक्कड़ों के बेहद छोटे दुकानदारों) का रोजगार एक झटके में ऐसे छिन सकता है, जैसे गधे के सिर से सींग गायब होनेवाली कहावत कही जाती है।

अब यहां विदेशी कंपनियों की भारत में इतनी बड़ी दिलचस्पी की वजह पर भी गौर कर लें। दरअसल, दुनिया में जो 30 बड़े बाजार बन रहे हैं, उनमें भारत दूसरे पायदान पर माना जा रहा है। असंगठित क्षेत्र को एक पल के लिए भूल भी जाएं, तो संगठित क्षेत्र भी वॉलमार्ट की अत्यधिक गहरी जेबों के आगे टिकने की स्थिति में हैं, इस पर अब किसी को यकीन करने की जरूरत भी नहीं होनी चाहिए। भारत काफी बड़ा देश माना जाता है और यहां 35 शहर ऐसे हैं, जहां वॉलमार्ट अपना बड़ा बाजार खोलना चाहेगा। उसका सपना अपने इन्हीं बड़े बाजारों के जरिए रोजमर्रा वस्तुओं को बेचने का इरादा रखता है। मुमकिन है कि उसकी इन्हीं कोशिशों से स्थानीय दुकानदारों को अपना बोरिया–विस्तर समेटना पड़ जाए। पूरी संभावना है कि वॉलमार्ट अपने उत्पादों के लिए कच्चा माल विदेशों से मंगवाएगा। फल–सब्जियों को वह या तो पहले से तय भाव पर सीधे किसानों से खरीदेगा या फिर इन्हें भी विदेशों से आयात करा ले। उसे तो इस काम में भी कोई अड़चन आती नहीं दिख रही है।

इतना तय मानिए कि अगर उसका यही रुख कायम रहता है, तो तकरीबन 4 लाख 32 हजार छोटे भारतीय दुकानदारों के रोजगार पर सीधा असर पड़ेगा। बाजार पर नजर रखनेवालों का अनुमान है कि असंगठित क्षेत्र में नियोजित करीब 80 लाख लोगों को विस्थापित करके महज 43,540 लोगों को रोजगार की सुविधा देने का इंतजाम किया जाने वाला है। आधुनिक 'खुदराकरण' में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर बड़ी आपत्ति की वजह ही यह है कि इससे मानव श्रम पर सबसे ज्यादा कुठाराघात होने की आशंका बढ़ती जा रही है। इसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि एक बड़ी खुदरा कंपनी सम्पूर्ण स्थानीय अर्थव्यवस्था को तहस–नहस कर सकती है। चीन, मलेशिया और थाईलैंड भी भारत की तरह पहले विदेशी खुदरा कंपनियों को हाथोंहाथ ले रहे थे, पर बाद में इनको नियंत्रित करने के लिए कानून बनाने पड़े। खुदरा दुकानों पर चीजों के मनमाने भाव वसूलने की बड़ी शिकायतें आ रही हैं, पर सीधे तौर पर उनके खिलाफ कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी लगाम सरकार के हाथों से छूट चुकी है। बेहतर यही है कि विदेशी कंपनियों के मामले में सरकार उतावली न हो, बल्कि सावधानी बरते, यही देश हित में है। ❖

विनोबा भावे विश्वविद्यालय हजारीबाग

संदेश

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हजारीबाग, झारखंड में अवस्थित विनोबा भावे विश्वविद्यालय अपने स्थापनाकाल 17 सितम्बर, 1992 से निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। विगत 15 वर्षों में इस विश्वविद्यालय ने कुशल कुलपति, अधिकारी, शिक्षक व कर्मचारियों की बदौलत प्रदेश से बाहर भी अपनी पहचान बनाई है। अविभाजित बिहार में नवनिर्मित छः विश्वविद्यालयों में से यही एक ऐसा विश्वविद्यालय है जिसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की मान्यता प्राप्त है। यह श्रेय तत्कालीन कुलपति (प्रभारी) जो अभी वर्तमान में कुलपति हैं, डॉ. महेन्द्र प्रसाद सिंह को प्राप्त है। इस विश्वविद्यालय के छात्र/छात्राएं शिक्षण, खेलकूद एवं अन्य विद्याओं में राष्ट्रीय स्तर तक अपनी पहचान बना चुके हैं, तथा विश्वविद्यालय को गौरवान्वित कर रहे हैं।

भविष्य में यह विश्वविद्यालय केन्द्रीय विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो, इसी मंगल कामना के साथ विश्वविद्यालय परिवार निरंतर कार्य कर रहा है।

हस्ताक्षर

(सतीश प्रसाद सिन्हा)
कुलसचिव

विज्ञापन

कबिरा खड़ा बाजार में मांगे अपनी खैर

आर्थिक सुधारों के नाम पर स्वतंत्र बाजार व्यवस्था का पदार्पण, वैश्विक उदारीकरण एवं निजीकरण के रूप में नई बोतल में पुरानी शराब है।

■ डॉ. जयप्रकाश मिश्र

अर्शशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने अर्थशास्त्र की परिभाषा में बताया था कि ''अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है।'' बाद में इसे धन कमाने के लिए उन्होंने मुक्त व्यापार या स्वतंत्र व्यापार करने की दुनिया के देशों के बीच वकालत की। चूँकि एडम स्मिथ यूरोप के रहने वाले अर्थशास्त्री थे, इसलिए ऐसा लगता है कि यूरोप के देशों ने इस महान अर्थशास्त्री के सिद्धान्तों को व्यवहार में भी लागू कर दुनियां के अविकसित एवं अल्पविकसित देशों का शोषण कर अपने आप को विकसित देशों की श्रृंखला में शामिल कर लिया।

इतिहास गवाह है कि भारत में ईष्ट इंडिया कम्पनी व्यापार के लिए आई थी, बाद में व्यापार करते–करते हुकूमत करने लगी। अनुभव बताता है कि किसी व्यक्ति या देश पर यदि हुकूमत करना है तो पहले उस देश के आर्थिक स्त्रोत खत्म करो, व्यक्ति या देश को आर्थिक रूप से विपन्न कर उसे आर्थिक रूप से गुलाम बना लो। आर्थिक गुलामी के पश्चात राजनैतिक गुलामी तो अपने आप आ जाएगी।।

एडम स्मिथ की इस मुक्त व्यापार की अवधारणा को लगभग 200 वर्षों से अधिक के बाद भी 'ग्लोबल ब्लेज' की कल्पना को साकार करने के लिए नये आर्थिक सुधारों के नाम पर एक स्वतंत्र बाजारवाद व्यवस्था का पदार्पण विश्व में हुआ। 1991 में भारत ने भी इसे अपनाया। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण के रूप में बाजार का यह रूप नई बोतल में पुरानी शराब ही है, ब्रांड का नाम भर बदल दिया।

आज देश में उदारीकरण के चलते न जाने कितने तरह के बाजार पल्लवित एवं पुष्पवित हो रहे हैं, जिनमें पूंजी बाजार, शेयर बाजार, वायदा बाजार, खुदरा बाजार, थोक बाजार, सेवा बाजार, सुपर बाजार, आदि कुछ नाम हैं जो वर्तमान में भारत में अखबारों की सुर्खियों एवं नीतिकारों एवं योजनाकारों की नीतियों के मुख्य रूप से विषय वस्तु हैं। अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार, लेखक आदि के चिन्तन एवं चिंता की विषय वस्तु भी ये बाजार हैं।

किसी जमाने में बाजारवादी व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए कबीर ने कहा था कि 'कबिरा खड़ा बाजार में मांगे सबकी खैर, 'लेकिन यदि आज कबीर जिन्दा होते तो वर्तमान में इस वैश्विक बाजार व्यवस्था को देखकर अपने चिन्तन को अवश्य पलट देते क्योंकि उनके इस परोपकारवादी वाक्य को आज दुनियां में कोई ऐसा संवेदनशील विक्रेता या उत्पादक नहीं है जो कबीर के इस नैतिक वाक्य को अपने जहन में उतार कर उसे अंजाम देता। दुनिया के अन्य देशों के उत्पादक एवं विक्रेताओं की बात तो हम तब करें जब हम अपने विक्रेताओं एवं उत्पादकों को कबीर के इस वाक्य पर चलने के लिए राजी कर पायें। आज भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में खुदरा बाजार में विदेशी कम्पनियों के साथ देशी भी बड़े–बड़े पूंजीगत सुपर मार्केट के माध्यम से वायदा कारोबार पर अपना नियंत्रण करना चाहती हैं। इन बाजारों के माध्यम से बेरोजगारों को रोजगार देने की बात करते हैं परन्तु अनुभव तो इसके अभी तक विपरीत हैं। आज तक 1969 से जितनी भी विदेशी कम्पनियों ने या देशी कम्पनियों ने रोजगार देने के वायदे किये हैं लगभग झूठे साबित हुये, इन पर विश्वास कैसे किया जाए। यदि इन्होंने रोजगार दे भी दिये तो श्रमिकों का शोषण नहीं छोड़ेंगे। क्योंकि इनका उद्देश्य किसी देश के गरीब को रोटी और रोजगार देना नहीं है, इनका उद्देश्य लाभ कमाना है। जब कोई देश या व्यक्ति लाभ हानि के फेरे में पड़ता है तो

वह सेवा अथवा परोपकारी भावना से भटक जाता है। संगठित खुदरा बाजार पर जब बड़ी पूंजी कम्पनियों का अधिपत्य होगा, तब छोटे दुकानदार, खुदरा कारोबार करने वाले, किसान आदि पर बुरा असर पड़ेगा अर्थात् उनके रोजगार छीने जाने का भय है या फिर उनका प्रकारांतर से शोषण किया जायेगा। कृषि के क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तकनीकि के नाम पर अमरीका से भारत आ रहा है। जिसका उद्देश्य कृषि शोध, शिक्षा एवं विपणन बताया गया है। परन्तु अमरीकी कम्पनियों मोनसांटों एव वॉलमार्ट ने स्पष्ट रूप से स्वीकारा कि ''उनकी रूचि भारत के विकास में नहीं, अपने उत्पादक बेचने में है।'' अर्थात् कृषि के क्षेत्र में शोध नहीं कृषि उत्पादन पर कब्जा करना तथा कमाना है। इस तरह का बाजारवादी लाभ कमाने वाली सोच तो हमारे किसानों को दो वक्त की रोटी भी मुहैया नहीं कर पायेगी। आज भारत का अधिकांश किसान एवं मजदूर गरीब अवश्य है पर उसे दो वक्त की रुखी सूखी रोटी तो प्राप्त हो रही हैं, जिससे पेट भरता है। यदि ये विदेशी कम्पनियां संगठित खुदरा बाजारों के नाम पर कृषि, शिक्षा एवं दवाईयों पर अपना कब्जा जमा बैठीं तो निश्चित रूप से गरीब किसान की तो और दुर्दशा होगी ही। साथ ही यदि विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां दवा उद्योग का जो पेटेंट चाहती हैं यदि यहां हो गया तो इन गरीब और किसानों का कुपोषण शिकार होने के साथ सस्ती दवाईयां भी छिन जायेगी।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी विदेशी पूंजी कम्पनियों के निवेश की भी वकालत लगातार की जा रही है। अच्छा है परन्तु इन विदेशी निवेश उच्च शैक्षणिक संस्थानों में भी कृषक, मजदूर, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों के बच्चों या आश्रितों को जो भी छूट शासकीय शैक्षणिक संस्थानों में मिलती है। या जो सुविधायें वहां दी जाती है, वह फ्री ऑफ कास्ट क्या मुहैया हो पायेंगी। वैश्वीकरण के इस दौर में असमानता बढ़ती जा रही है। सामाजिक न्याय की अवधारणा अब बेमानी सी लगने लगी है। अनेक तरह के बाजारों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों या देश के बड़े–बड़े पूंजीपतियों का बढ़ता शिकंजा इस बात का द्योतक है कि इस ''अर्थ प्रधान युग'' में ''अर्थ'' के माध्यम से दुनिया का एक बड़ा तबका 'समर्थ' बनता जा रहा है तथा विपन्न तबका 'अर्थ' के अभाव से असमर्थ। यदि कबीर, आज जिन्दा होते तो उनका कथन इस बाजारवादी व्यवस्था को देखकर जरूर यह होता कि **''कबिरा खड़ा बाजार में मांगे अपनी खैर।''** ❖

कम हुई गरीबों की संख्या, फिर भी 30 करोड़

गरीबी उन्मूलन के सरकारी प्रयास अब रंग दिखाने लगे हैं। हालांकि यह रंग उतना सुर्ख नहीं है। पिछले दस सालों में करीब 8.5 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से ऊपर आए, लेकिन फिर भी देश में करीब 30 करोड़ से अधिक लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं। सरकार ने इसकी अधिकारिक तौर पर पुष्टि की कि इस समय देश में 30.17 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। योजना आयोग द्वारा जारी अनुमानों के मुताबिक, 2004–05 में देश की कुल आबादी का 27.5 हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे था जबकि 1993 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 36 था।

योजना आयोग द्वारा जारी इन आंकड़ों से एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात सामने आती है। देश के कुल गरीबों में से आधे कुल पांच राज्यों में रहते हैं। अधिक स्पष्ट करें तो 2004–05 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले कुल 30 करोड़ 17 लाख लोगों में से 17 करोड़ 34 लाख लोग बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में रहते हैं। सबसे अधिक 4 करोड़, 73 लाख ग्रामीण गरीब उत्तर प्रदेश में बसते हैं। ऐसे समय में जब उत्तर प्रदेश में चुनाव हो रहा हैं, ये आंकड़े मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव के लिए असुविधाजनक हो सकते हैं। सरकार द्वारा जारी 1993–94 के आकड़ों से तालिकाओं की तुलना करें तो अब ग्रामीण इलाकों में 37.3 प्रतिशत और शहरी इलाकों में 32.4 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते थे। ऊपर के आंकड़े 'यूनिफॉर्म रिकॉल पीरियड' पर आधारित हैं। मनोरंजक यह है कि अगर योजना आयोग द्वारा आंकड़े जारी करने से दूसरे आधार 'मिक्स्ड रिकॉल पीरियड' पर गौर किया जाए तो दूसरी बहस शुरू हो जाएगी। क्या शहर और गांव का विभाजन बेमानी है? इन आकंड़ों के मुताबिक ग्रामीण इलाकों में 21.8 प्रतिशत लोग शहरी इलाकों में 21.7 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं। मतलब यह कि गांव और शहर में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों के प्रतिशत में लगभग नगण्य अंतर है।

इन पांच राज्यों में बसते हैं आधे गरीब

राज्य	गरीब	प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	5 करोड़ 90 लाख	32.8
पश्चिम बंगाल	2 करोड़ 8 लाख	24.7
बिहार	3 करोड़ 69 लाख	41.4
मध्य प्रदेश	2 करोड़ 49 लाख	38.3
महाराष्ट्र	3 करोड़ 17 लाख	30.7

सबसे अधिक प्रतिशत के आधार पर

गरीबी	राज्य	प्रतिशत
गरीब	उड़ीसा	46.4
शहरी गरीब	उड़ीसा	44.3
ग्रामीण गरीब	उड़ीसा	46.8

गरीबी रेखा के नीचे : ग्रामीण 28.3 प्रतिशत, शहरी 25.7 प्रतिशत

माकपा के माथे पर कलंक

नंदीग्राम की हिंसा से माकपा के चेहरे से नकाब उतर गया है और उसकी असली सूरत पूरे देश के सामने आ गई है।

■ **स्वप्नदास गुप्त***

नंदीग्राम में माकपा कार्यकत्ताओं के इशारे पर पुलिस ने बर्बरता की सारी सीमाएं लांघते हुए कम से कम 14 निर्दोष लोगों को मौत की नींद सुला दिया और सैकड़ों को घर छोड़कर भागने पर मजबूर कर दिया। इस घटना से पश्चिम बंगाल में तीन दशक से शासन कर रही माकपा के माथे पर कलंक लगने के साथ ही उसका दमनकारी चेहरा भी सामने आ गया है। इस भयानक हादसे से यह जाहिर हो गया कि सत्ता के नशे में चूर दल न तो आलोचना बर्दाश्त कर सकते हैं और न ही विपक्ष की दलीलें। नंदीग्राम में जो हुआ उसकी वजह यह नहीं थी कि राज्य सरकार विकास के लिए कृतसंकल्प थी, बल्कि इसके पीछे बाहुबल का प्रदर्शन करने की सोच थी। पिछले तीस सालों में सूबे के ग्रामीण इलाकों में माकपा का एकछत्र राज है। गांवों में माकपा की पैठ का मतलब यह नहीं कि लाल झंडा जनता के दिल में बसता है। माकपा ने अपनी पकड़ भोली–भाली जनता को डरा–धमका कर बनाई है।

1977 से बंगाल में सत्ता सुख भोग रही माकपा ने ग्रामीणों को दो वर्गों में विभाजित कर दिया है। एक तो वे जो उसके साथ हैं और दूसरे वे जो साथ नहीं हैं। सीमावर्ती जिलों को छोड़कर समूचे ग्रामीण बंगाल में माकपा की गहरी पकड़ का राज अब खुलने लगा है। माकपा ने क्रूरता और आतंक के बल पर गांवों में अपना जो साम्राज्य स्थापित किया है उससे मुक्ति के लिए अब बड़ी संख्या में स्थानीय समुदाय आवाज बुलंद करने लगा है। माकपा सरकार ने स्टालिनवाद पर न केवल उपदेश दिए बल्कि राज्य में पूरी निर्लज्जता के साथ उसे पाला पोसा। इसकी आड़ में माकपा रहनुमा की खाल ओढ़कर किसी क्रूर राजा की तरह तानाशाही का साम्राज्य फैलाती रही।

नंदीग्राम को लेकर बौद्धिक किस्म के कुछ लोग वामपंथी सरकार की आलोचना करने का पाखंड कर रहे हैं। ऐसे लोग कपटी हैं। कई दशकों तक वामपंथियों ने जब अपने विरोधियों को कुचलने के लिए दमनकारी रवैया अपनाया तब यही बौद्धिक लोग उसके साथ थे और उनकी नीतियों का गुणगान करते थे। बंगाल को रक्तरंजित बनाने में इन लोगों का भी उतना ही दोष है जितना वामपंथियों का। ऐसे लोग वामपंथियों द्वारा रचे गए षड्यंत्र का ही हिस्सा रहे हैं। अब वे अपना दामन पाक साफ दिखाने के लिए वाम सरकार को भला–बुरा कह रहे हैं।

नंदीग्राम की हिंसा से माकपा के चेहरे से नकाब उतर गया है और उसकी असली सूरत पूरे देश के सामने आ गई है। अब जब भी 'सहमत' द्वारा बनाई गई फिल्म को गुजरात में वितरक न मिलें और उसे लेकर वामपथी न्याय की दुहाई दें या फिर जब भी संसद के बाहर वृंदा करात आदिवासियों के साथ फोटो सेशन कराती दिखें तो फिर बुद्धदेव भट्टाचार्य सूफियाना लहजे में नेरुदा या ब्रेख्त की कविताओं का पाठ करते दिखें तब उनके द्वारा ढहाए गए जुल्मों की याद दिलाने के लिए एक ही शब्द काफी होगा। नंदीग्राम। नंदीग्राम की हिंसा वाम आंदोलन के रक्तरंजित इतिहास की न तो पहली घटना है और न ही आखिरी। 1917 की बोलशेविक क्रांति के दौरान हुए खूनखराबे और वाम आंदोलनों में कोई फर्क नहीं है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारत के संदर्भ में नंदीग्राम की घटना

अहंकार में चूर ऐसे लोगों के लिए मील का पत्थर बन गई है, जिन्होंने ताल ठोककर घोषित कर दिया है कि इतिहास ने एक बार फिर उनके पक्ष में करवट ली है। नंदीग्राम की हिंसा के बाद माकपा जहां बचाव की मुद्रा में आ गई है, वहीं कांग्रेस नेतृत्व का दोहरा चरित्र भी उजागर हो गया है। सोनिया गांधी की मजबूरी है कि वह भाजपा शासित छत्तीसगढ़ में नक्सलियों के हाथों मारे गए 55 जवानों की हत्या पर हायतौबा नहीं मचा सकतीं, क्योंकि फिर उन्हें नंदीग्राम पर भी कुछ बोलना पड़ेगा। नंदीग्राम को लेकर कांग्रेस आंख पर पट्टी बांधकर और कान में रूई डालकर बैठी है, क्योंकि संप्रग सरकार वामपंथियों की बैसाखी पर ही टिकी हुई है। वामपंथी विचारधारा का बौद्धिक समुदाय खामोश है। उनमें से बहुतों की आंखों का पानी मर चुका है। उनकी अंतरआत्मा वामपंथी सत्ता तले मर, चुकी है।

देशभर में गंभीर होते जा रहे खाद्यान्न संकट को देखते हुए विशेष आर्थिक जोन पर चल रही बहस ने अब राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया है। वह बहस आक्रामक नहीं है, लिहाजा संप्रग सरकार की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हालांकि राजग इस मामले को धार देने में जुटा है। मेधा पाटेकर और मुसलिम संगठनों के विरोध प्रदर्शन भले ही वक्त के साथ कमजोर पड़ जाएं, लेकिन पश्चिम बंगाल की राजनीति पर इनका दूरगामी प्रभाव पड़ेगा। यह साल पश्चिम बंगाल से नई दिल्ली के बीच उड़ान शुरू होने की 40वीं वर्षगाठं के रूप में मनाया जा रहा है। माकपा के समर्थन से सत्ता में आई यूनाइटेड फ्रंट सरकार ने खूनखराबे की शुरूआत की, जिसे नक्सली आंदोलन और कांग्रेस की गुंडागर्दी ने आगे बढ़ाया। इसमें कोई शक नहीं कि इस वजह से आर्थिक प्रगति की राह में पश्चिम बंगाल पिछड़ता गया।

क्या आपको 1967 को घेराव आंदोलन याद है? तब हुबली नदी के दोनों किनारों पर स्थित हजारों फैक्ट्रियां खाली हो गई थीं। इस आंदोलन से वाम राजनीति पर प्रतिकूल असर पड़ा और उनकी बहुत आलोचना हुई थी। पश्चिम बंगाल का पतन केवल आर्थिक रूप से ही नहीं हो रहा। वामपंथियों के अजीबोगरीब राजनीतिक कदमों की वजह से इस राज्य ने सामाजिक रूप से भी बहुत कुछ खो दिया है। एक ब्रिटिश टिप्पणीकार ने किसी दूसरे संदर्भ में 'दुख और हताशा से भरे समुदाय' का जिक्र किया था, जो आज के परिप्रेक्ष्य में पश्चिम बंगाल पर बिल्कुल फिट बैठता है। अगर आपको यकीन न हो तो मृणाल सेन और रित्विक घटक फिल्में देख लीजिए, आपकी आंखें और सोच दोनों खुल जाएंगे। अनाचार और कमियां अब सिर्फ वामदलों तक ही सीमित नहीं रह गई हैं, बल्कि गैर–वामदल भी इसकी चपेट में आ गए हैं। नंदीग्राम की घटना को लेकर जारी विरोध प्रदर्शनों से यह बात जाहिर भी हो गई है। ❖

पूंजीवादी ढांचे के तहत औद्योगिकरण आवश्यक – करात

सिंगूर और नंदीग्राम में प्रभावित उद्योगों के खिलाफ व्यापक जन आक्रोश उमड़ने और नंदीग्राम में पुलिस फायरिंग में 15 किसानों के मारे जाने के बावजूद मार्कवादी कम्युनिस्ट पार्टी पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य की औद्योगिकीकरण की नीति का पुरजोर ढंग से समर्थन कर रही है। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव प्रकाश करात ने पार्टी के मुख पत्र 'पीपुल्स डेमोक्रेसी' में लिखे एक लेख में कहा है कि जो लोग चाहते हैं कि पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार औद्योगिकीकरण की नीति छोड़ दे, उन्हें निराशा ही हाथ लगेगी। भूमि सुधार लाभों को निरर्थक नहीं होने दिया जाएगा मगर औद्योगिकीकरण पर जोर देने की नीति को भी सरकार नहीं छोड़ेगी। संतुलित आर्थिक विकास के लिए पूंजीवादी ढांचे के तहत औद्योगिकीकरण भी आवश्यक है। अगर कोई दलीत देता है कि लघु और मध्यम दर्ज के उद्योग ही काफी हैं तो माकपा इससे सहमत नहीं है। बड़े स्तर की औद्योगिक इकाइयों की भी जरूरत हैं।

करात ने कहा कि पश्चिम बंगाल के भूमि अधिग्रहण और औद्योगिकीकरण के मुद्दे को हर कोई अपने नजरिए से देख रहा है। कुछ नवउदारवादी आर्थिक नीतियों के समर्थक इस बात से चिंतित हैं कि नंदीग्राम की घटनाओं से देश में विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने की प्रक्रिया को ठेस लगेगी। उधर अलग–अलग संगठनों के नक्सली और मेधा पाटकर जैसे लोग यह उम्मीद लगाए बैठे हैं कि नंदीग्राम की घटना के बाद पश्चिम बंगाल के औद्योगिकीकरण को रोका जा सकता है मगर दोनों ही गलत साबित होंगे। उन्होंने कहा कि जहां तक विशेष आर्थिक क्षेत्र का सवाल है, माकपा और वाममोर्चा सरकार यह चाहती है कि विशेष आर्थिक क्षेत्र के चरित्र और दायरे में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए जाएं। फरवरी में ही वाम मोर्चा सरकार ने तय कर लिया था कि अखिल भारतीय स्तर पर विशेष आर्थिक क्षेत्र कानून में जब तक परिवर्तन नहीं किए जाते हैं तब तक पश्चिम बंगाल में नए विशेष आर्थिक क्षेत्र स्थापित नहीं किए जाएंगे। पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, हरियाणा और अन्य राज्यों की तरह के विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना नही करेगा जहां बड़े व्यापारिक घरानों को बड़े पैमाने पर जमीनें दी गईं जिससे जमीन की सट्टेबाजी को बढ़ावा मिलेगा। वाम दलों ने पहले ही केन्द्र सरकार को बता दिया है कि वे किस तरह के परिवर्तन चाहते हैं। माकपा महासचिव का कहना है कि माकपा भाजपा से लकर नक्सलियों के बीच हुए गठजोड़ से आतंकित नहीं होगी। पश्चिम बंगाल के लोग जानते हैं कि कौन उनके हितों के असली हिमायती हैं और कौन प्रति क्रांतिकारी गठजोड़ हैं।

नंदीग्राम में जो हुआ वह एकाकी घटना नहीं बल्कि वाम मोर्चा के दमन के खिलाफ पिछले तीस साल में दमित हो रही भावनाओं का विस्फोट था। औद्योगीकीकरण जरूरी है, लेकिन उपजाऊ जमीन पर उद्योग लगाने का कोई फायदा नहीं है। वाम मोर्चा अपने तीस साल के शासनकाल में राज्य की पूर्व कांग्रेस सरकार के दुर्गापुर आसनसोल क्षेत्र में कल्याणकारी और चितरंजन की तर्ज पर एक भी औद्योगिक केन्द्र स्थापित करने में नाकाम है।

रामेश्वरम का अस्तित्व मिटाने की साजिश

भारत की संस्कृति के साथ खिलवाड़ देश की जनता बर्दास्त नहीं करेगी और इसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं।

■ **आर.पी.दुबे**

सेतु समुद्रम परियोजना के नाम पर रामेश्वरम का अस्तित्व मिटाने की साजिश भारतीय संस्कृति के लिए सबसे बड़ा खतरा है। भारत की अद्‌भुत संस्कृति के प्रतीक रामेश्वरम के अस्तित्व को देश के राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने भी स्वीकृति देकर इसका अस्तित्व मिटाने वालों को कटघरे में खड़ा किया है। 20 दिसम्बर को केरल के कोल्कम जिले में अलप्पड़ पंचायत को मुख्य भूमि से जोड़ने वाले अमृत सेतु का उद्‌घाटन करने आए राष्ट्रपति ने यह कहकर कि ''मुझे याद आता है, अपना रामेश्वरम, कहते हैं कि भगवान राम ने रामेश्वरम धनुषकोटि में एक सेतु बनाने का आदेश दिया था। भगवान राम की वानर सेना ने देखते ही देखते सेतु बनाया जिससे पार होकर राम की सेना दुष्ट रावण के संहार के लिए लंका पहुंची थी। रामायण में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पिछले दिनों उपग्रह से मिले चित्र दर्शाते हैं कि रामेश्वरम और श्रीलंका के बीच उसी सेतु के अवशेष अब भी मौजूद हैं''।

प्राचीन श्री राम सेतु को सरकार गुपचुप तरीके से तोड़ने की कोशिश जारी रखे हुए हैं। विश्व हिन्दू परिषद के अंतर्राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अशोक सिंहल ने भी सरकार को चेतावनी दी है, कि वह श्रीराम सेतु को तोड़ने से बाज आए, वरना इसके परिणाम अच्छे नहीं निकलेंगे। सेतु समुद्रम परियोजना के क्रियान्वयन से श्रीराम सेतु ध्वस्त होने का खतरा मंडरा रहा है। भाजपा अध्यक्ष श्री राजनाथ सिंह ने इस परियोजना से जुड़े विभिन्न आयामों और सरकारी योजना के अध्ययन के लिए डॉ. मुरली मनोहर जोशी की अध्यक्षता में एक 6 सदस्यीय समिति गठित की है। डॉ. जोशी के अलावा इस समिति में तीन सांसद श्री वेद प्रकाश गोयल, श्री गोपाल व्यास और श्री थिरिनाउकरसर एवं तमिलाडु प्रदेश के भाजपा अध्यक्ष श्री एल गणेशन और सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता श्री अरुणा चालीसा शामिल हैं।

श्री जोशी के नेतृत्व में गठित समिति की विशेष रपट में यह उल्लेख किया गया है कि सुनामी तूफान के समय इसी रामसेतु ने भारत के तटों की रक्षा की थी और प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह को एक पत्र लिखकर सावधान किया है कि रामसेतु तोड़ा जा रहा है जो असंख्य हिन्दुओं की भावनाओं पर अधात है। गत 19 मार्च से 22 मार्च के दौरान इस समिति ने धनुष्कोटि और श्रीराम सेतु का दौरा किया था, वहां चल रहे जलमार्ग खनन का जायजा लिया। इस दौर के बाद डॉ. जोशी ने यह कहकर कि अगर खनन कार्य इसी तरह जारी रहा तो श्रीराम सेतु ध्वस्त हो जाएगा, देश के करोड़ों हिन्दुओं को चिंता में डाल दिया है।

ज्ञातव्य है कि भारत और श्रीलंका के बीच मन्नार की खाड़ी से होता हुआ लगभग 30 किलोमीटर लम्बा क्षेत्र, जो सागर शैलों से पुल के समान आच्छादित है, उसे प्राचीन काल से श्रीराम सेतु के नाम से जाना जाता है जिसे ध्वस्त करने की सारी तैयारियां पूरी हो चुकी हैं। पुराविदों के शोध के आधार पर 30 किलोमीटर लम्बा श्री राम सेतु 17 लाख वर्ष पुराना है। पांच हजार वर्ष पहले जो हिन्दू ग्रंथ रचे गए उनमें श्री राम सेतु का बहुत प्रेरक एवं रोचक और महिमावान

वर्णन मिलता है। हाल ही में भारत सकरार ने अरबों रुपए का सेतु समुद्रम नौका नहर प्रकल्प स्वीकृत किया है, जिसका उद्देश्य है मन्नार की खाड़ी से होते हुए समुद्री नौकाओं के आवागमन का जलमार्ग तैयार करना। यह जलमार्ग तैयार करने के लिए धनुष्कोटि के पास श्रीराम सेतु के अंतिम छोर पर शैल खंडों को तोड़ना ताकि वहां से बड़े समुद्री जहाज आसानी से पार हो सकें। इसके पीछे यह तर्क दिया जा रहा है कि श्रीराम सेतु नाम से प्रसिद्ध शैल खंड, जिन्हें ईस्ट इंडिया कंपनी के इतिहासकारों ने आदम पुल का नाम दिया था, तोड़कर नौकाओं के लिए जलमार्ग सुगम बनाने से तीस घंटे का नौवहन समय और चार सौ किलोमीटर की श्रीलंका द्वीप के चारों ओर की जाने वाल यात्रा बच जाएगी।

सरकार का यह तर्क देश के हिन्दू संगठनों और भारतीय सांस्कृतिक गौरव से जुड़े विभिन्न संस्थानों को स्वीकार्य नहीं है। अनेक ऐसे संगठन हिन्दू संवेदनाओं और भारतीय विरासत के विरुद्ध इस सबसे भीषण और पाश्विक आक्रमण के विरुद्ध खड़े हो गए हैं, जो हिन्दू बहुल देश में, हिन्दू बहुमत द्वारा चुनी सरकार के अधिकांश नेता और अधिकारियों द्वारा तोड़ा जा रहा है।

डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने प्रधानमंत्री को लिखे पत्र में कहा है कि राम सेतु को बचाना समय की आवश्यकता है क्योंकि श्रीराम सेतु को बचाते हुए मार्ग निर्धारित करने से यह सेतु भविष्य में भी सुनामियों के सामने एक दीवार की तरह काम करेगा। पिछले सुनामी के समय इस सेतु ने दक्षिण तटों पर सुनामी का प्रकोप काफी हद तक कम कर दिया था। डॉ. जोशी ने श्रीराम सेतु को प्राचीन पवित्र स्मारक बताते हुए उसकी सुरक्षा की मांग की है। प्रधानमंत्री से चर्चा के इच्छुक डॉ. जोशी ने कहा कि यदि आवश्यकता पड़ी तो इसे संसद में भी उठाया जाएगा तथा उन्होंने प्रधानमंत्री से संसदीय जांच समिति गठित करने की भी मांग की है।

सभी लोग जाति पंथ और राजनीतिक मतभेद भुलाकर एक स्वर में विरोध कर रहे हैं तथा देश के सभी राम भक्त सरकार की साजिश के खिलाफ एकजुट हैं, इसलिए यदि सरकार ने अपना फैसला वापस नहीं लिया तो देश को इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं।

श्रीराम सेतु को बचाने के लिए किए जा रहे प्रयासों के तहत स्वामी ओंकारानंद जी के निर्देश पर तमिलनाडु मछुआरा संघ के अध्यक्ष श्री कुपुराम ने रामनाथपुरम के न्यायालय में एक याचिका दायर की है। वे सुनामी सहायता एवं पुनःनिर्माण समिति के प्रदेश संयोजक भी हैं। तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, रामनाथपुरम के जिला संघ चालक हैं, का कहना है कि श्रीराम सेतु तोड़े जाने की साजिश की कड़ी भर्त्सना की गई है। यहां के सभी लोग जाति पंथ और राजनीतिक मतभेद भुलाकर एक स्वर में विरोध कर रहे हैं तथा देश के सभी राम भक्त सरकार की साजिश के खिलाफ एकजुट हैं, इसलिए यदि सरकार ने अपना फैसला वापस नहीं लिया तो देश को इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। याचिकाकर्ता श्री कुपुराम ने देशव्यापी अभियान शुरू किया है तथा रामसेतु बचाने के लिए 37 लाख लोगों द्वारा हस्ताक्षरित एक ज्ञापन राष्ट्रपति को दिया गया है। डॉ. कलाम ने हालांकि आश्वासन भी दिया है कि वे निश्चित रूप से संबंधित अधिकारियों से इस विषय में बात करेंगे परंतु अभी तक कुछ नहीं हुआ।

देश के सभी रामभक्त इसके विरुद्ध हैं, मछुआरा समाज इसके विरुद्ध है। केवल विरोध करने से यह नहीं बचेगा, इसके लिए रामभक्तों को आरपार की लड़ाई के लिए तैयार करना पड़ेगा। अब रामसेतु को बचाने के लिए राष्ट्रव्यापी जागरण और आंदोलन का समय आ गया है। शुरूआत हो चुकी है। अनेक वैज्ञानिक, पुरातत्वविद, भूगर्भशास्त्री, मौसम विज्ञानी और समुद्र विज्ञानी यहां पहुंच रहे हैं। रामसेतु को बचाने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद, स्वदेशी जागरण मंच सहित अन्य सभी हिन्दू संगठनों ने एकजुट होकर करो या मरो का ऐलान किया है। देश के सभी शंकराचार्य, आचार्य एवं सभी पंथों के प्रमुखों ने भी अपना विरोध प्रकट किया है। मैं समझता हूँ कि सरकार को अब समझ आ जानी चाहिए कि भारत की संस्कृति के साथ खिलवाड़ देश की जनता बर्दास्त नहीं करेगी और इसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं। ❖

छोटे शहरों ने महानगरों को पछाड़ा

चमचमाते हीरों के लिए मशहूर सूरत शहर की एक और खासियत है कि देश के अन्य शहरों में पुरुषों के पास सबसे अधिक रोजगार है। यहां प्रति हजार आबादी में से 876 पुरुषों के पास रोजगार हैं।

दिलचस्प बात है कि दूसरे नम्बर पर पिछड़ा पूरब का वाराणसी आता है, जहां हजार पुरुषों में से 860 के पास रोजगार है। वहीं सबसे कम रोजगार पटना (528) में है। प्रति हजार आबादी में लुधियाना में 834, आगरा में 833, मेरठ में 790, मुंबई में 786, दिल्ली में 714 व लखनऊ में 695 पुरुषों के पास रोजगार है। महिलाओं की बात करें तो सबसे अधिक रोजगार वाराणसी देता है जहां प्रति हजार में 411 महिलाओं के पास रोजगार है। इसके बाद जयपुर 837, पुणे 291, का नंबर आता है। इसमें भी सबसे खराब स्थिति पटना की है, जहां हजार में से सिर्फ 18 महिलाएं रोजगारशुदा हैं। नेशनल सैंपल सर्वे द्वारा देश में रोजगार व बेरोजगारी की स्थिति (2004–05) पर कराए गए सर्वेक्षण के मुताबिक, शहरी क्षेत्रों में रहने वाले आधे से अधिक मुसलमान स्वरोजगार में लगे हैं जबकि दिहाड़ी मजदूरों की संख्या हिन्दुओं और ईसाईयों में अधिक है। सरकारी सर्वेक्षण के नतीजे कहते हैं कि शहरी क्षेत्रों में 49 प्रतिशत मुसलमान, 36 प्रतिशत हिंदू और 27 प्रतिशत ईसाई परिवार स्वरोजगार में लगे हैं। शहरी इलाकों में नियमित रूप से दिहाड़ी पर काम करने वाले केवल 30 प्रतिशत मुसलमान हैं जबकि ऐसे हिंदू परिवारों का प्रतिशत 43 और ईसाई परिवारों का प्रतिशत 47 है। नेशनल सैंपल सर्वे द्वारा प्रमुख धार्मिक समूहों में रोजगार की स्थिति पर सर्वेक्षण के कुछ आंकड़े ध्यान देने योग्य हैं। मसलन, उत्तर प्रदेश में शहरी क्षेत्रों में हिन्दुओं के मुकाबले मुसलमानों में रोजगार की स्थिति थोड़ी बेहतर है। यूपी में 1000 में 330 हिंदू रोजगार में हैं तो मुसलमानों की संख्या 335 है। अगर राष्ट्रीय स्तर पर बात करें तो शहरी क्षेत्रों में प्रति हजार आबादी में से 373 हिंदू, 331 मुसलमान, 375 ईसाई और 365 सिख रोजगारशुदा हैं। राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में 451 हिंदू, 339 मुसलमान, 461 ईसाई और 457 सिंखों के पास रोजगार हैं। दिल्ली में प्रति हजार आबादी में 337 हिंदू और 346 मुसलमानों के पास रोजगार हैं। हिमाचल प्रदेश में हिंदुओं (462) के मुकाबले मुसलमानों (562) के पास ज्यादा राजगार हैं। गोवा में यह आंकड़ा 383 (हिन्दू) और 802 (मुस्लिम) है।

विकास की सुगंध से दूर गरीब और ग्रामीण

मजबूत व गतिशील आर्थिक विकास दर के बावजूद देश के छोटे कस्बों में बेरोजगारी की समस्या जस की तस बनी हुई है। 50,000 से कम आबादी वाले शहरों में तो यह लगातार बढ़ती ही जा रही है। देश के अधिकांश सामाजिक–आर्थिक चिन्तकों का कहना है कि आर्थिक उदारीकरण का लाभ समाज के उच्च व मध्यम आय वर्ग तक तो पहुंचा है, लेकिन अत्यधिक ग्रामीण गरीब तक विकास की सुगंध नहीं पहुंच पाई है। नेशनल सर्वेक्षण के अनुसार छोटे कस्बों में बेरोजगारों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। वर्तमान दैनिक स्तर पर छोटे कस्बों में औसत बेरोजगारी वर्ष 1993–94 में 7.2 प्रतिशत थी जो बढ़कर वर्ष 2004–05 के दौरान 8.7 प्रतिशत हो गई है। मध्यम दर्जे के शहरों में भी जहां आबादी 50000 से 10 लाख के बीच है, बेरोजगारी बढ़ी है, लेकिन छोटे कस्बों के मुकाबले कम गति से बढ़ी है। देश के बड़े शहरों में भी इस अवधि में बेरोजगारी बढ़ी है।

अध्ययन रपट के अनुसार छोटे कस्बों में महिलाओं की बेरोजगारी दर 9.9 प्रतिशत से बढ़कर 13.2 प्रतिशत हो गई है, जबकि बड़े शहरों में यह 10 प्रतिशत से घटकर 7.7 प्रतिशत रह गई है। इससे संकेत मिलता है कि शहरी क्षेत्रों में कार्य के प्रति विशेषज्ञता को बढ़ावा मिल रहा है। बड़े शहर सेवा के क्षेत्र में भी बड़े सिद्ध हो रहे हैं जबकि छोटे कस्बों में औद्योगिक विनिर्माण को बढ़ावा मिल रहा है, लेकिन इसके बावजूद छोटे कस्बों में बेरोजगारी बढ़ रही है। कुछ बड़े–छोटे कस्बों में गरीबी कम हुई है, लेकिन न्यूनतम स्तर पर गरीब आबादी की कठिनायों में वृद्धि हुई है।

सेज जरूरी, मगर कृषि भूमि पर नहीं : डॉ. कलाम

भूमि अधिग्रहण के मामले में नंदीग्राम में हुए नरसंहार के विरोध के चलते संकट में आई केन्द्र सरकार को राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने यह कहकर एक बड़ी राहत दी है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) जरूरी तो है मगर कृषि भूमि पर नहीं। दिल्ली विश्वविद्यालय के श्रीराम कॉलेज ऑफ कामर्स के 81वें वार्षिकोत्सव में बतौर मुख्य अतिथि डॉ. कलाम ने इस बात पर जोर दिया कि सेज जरूरी है, लेकिन इसके लिए कृषि भूमि की जगह बेकार पड़ी जमीन का उपयोग किया जाना चाहिए। राष्ट्रपति ने दोहराया कि आर्थिक समृद्धि से अछूते इलाकों के विकास के लिए सेज योजना उपयोगी है। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि देश की 60 लाख हेक्टेयर भूमि पर खेती नहीं होती, इस भूमि का एक हिस्सा विकास के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त देश की चरमराती कृषि व्यवस्था में सुधार के लिए राष्ट्रपति ने कहा कि कृषि उत्पाद में अतिरिक्त मूल्य निर्धारण, फसलों की गुणवत्ता में सुधार के लिए संसाधनों का प्रयोग, आर्गेनिक कृषि को अपनाया जाना जरूरी है। इसी से विश्व बाजार में हम अपनी उपस्थिति दर्ज करा पाएंगे। ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए बैंकिग प्रणाली को पंचायतों तक पहुंचना होगा।

राष्ट्रहित में नहीं जम्मू–कश्मीर से सेना हटाने की बात

जम्मू कश्मीर से सेना को हटाए जाने के मुद्दे पर राज्य में सत्तारुढ़ गठबंधन के दो प्रमुख घटकों पीपुल्स डेमोक्रैटिक पार्टी और कांग्रेस के बीच खिंची तलवारों ने इस संवदेनशील राज्य को अनिश्चितता के गर्त में धकेल दिया है। पीडीपी के सर्वेसर्वा पिता–पुत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद और महबूबा सईद की जोड़ी जिस तरह से राज्य के

विसैन्यीकरण की मांग को तूल दे रही हैं उससे जहां गठबंधन टूट के कगार पर है वहीं जम्मू–कश्मीर सहित देश की सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। मुख्यमंत्री गुलाब नबी आजाद का यह मानना है कि राज्य के मैदानी हालात अभी ऐसे नहीं हैं कि वहां तैनात सेना को बैरकों में वापस भेजने जैसा कोई कदम उठाया जा सके। आजाद ने खुद स्वीकार किया है कि अभी जम्मू कश्मीर की जनता अपने को सुरक्षित महसूस नहीं करती जबकि जनता की हिफाजत करना सरकार का फर्ज है और इस नाते वे राज्य से सेना हटाने की सिफारिश नहीं कर सकते। मुख्यमंत्री की यह सिफारिश भले ही राजनीति से प्रेरित हो लेकिन इससे यह साफ है कि राष्ट्रहित की चिंता करने वाला कोई भी समझदार व्यक्ति जम्मू कश्मीर से सेना हटाए जाने की बेहूदी मांग को स्वीकार कर आतंकवादियों की मंशा पूरी करने के लिए राजी नहीं हो सकता।

नेवादा असेंबली में गूंजे वेद मंत्र

अमरीका की नेवादा स्टेट असेंबली की स्थापना के करीब 143 वर्ष बाद पहली बार उद्घाटन सत्र में संस्कृत मंत्रों की गूंज होने के साथ ही एक नया इतिहास रचा गया। उत्तरी नेवादा में हिन्दू मंदिर जन मामलों के निदेशक राजन जेड ने सोमवार को मंत्रों का जाप किया। भगवा वस्त्र तथा रुद्राक्ष माला धारण कर आए जेड ने सबसे पहले गायत्री मंत्र पढ़ा। फिर उन्होंने वृहदारण्यक उपनिषद से 'समतो मा सद्गमय...., तथा भगवद्गीता के कुछ श्लोक पढ़े। जेड ने आखिर में 'ओम शांति, ओम शांति' का जाप किया। यह पूरी प्रार्थना डेली जर्नल ऑफ दि लिजिस्लेचर में शामिल की जाएगी जो एक स्थायी सार्वजनिक रिकार्ड होता है। असेंबली के उद्घाटन सत्र में स्पीकर बारबरा बकले ने राजन जेड का परिचय कराया। इसके बाद जेड ने 'ओम' जाप के साथ हिन्दू प्रार्थनाएं शुरू कीं। इस दौरान सभी सदस्य खड़े रहे और उन्होंने ध्यानपूर्वक इन्हें सुना। जेड ने प्रार्थना के दौरान कहा, 'यह दिन सभी नेवादा वासियों तथा हमारे लिए ऐतिहासिक है जब लोकतंत्र के इस विशाल हॉल में प्राचीन हिन्दू प्रार्थनाएं की जा रही हैं।' इस मौके पर हिन्दू स्वयंसेवकों ने मिठाईयां बाटीं। कार्यक्रम में हिन्दू समुदाय के अलावा ईसाई धर्म के विभिन्न संप्रदायों के धर्माचार्यों सत्यचेतना इंटरनेशनल और वर्ल्ड पीस एंड डिवाइन मिशन ने भी भाग लिया।

भारत से बाहर जाने की जरूरत नहीं

दुनिया की नम्बर एक स्टील कंपनी आर्सेलर मित्तल के अध्यक्ष व सीईओ लक्ष्मी एन मित्तल ने देश के शिक्षित युवाओं को सफलता के गुर सिखाते हुए कहा कि युवाओं को अब विदेश का मुंह ताकने की जरूरत नहीं। श्री मित्तल ने कहा कि सफलता पाने के लिए भारत में सब कुछ है, इसलिए शिक्षित युवा अब देश में ही अच्छा कैरियर संवार सकते हैं। श्री मित्तल ने दावा किया कि आज देश में जितने अवसर हैं उतने पिछले 150 वर्षों में कभी नहीं रहे। उन्होंने कहा कि आज पूरी दुनियां युवा भारत की ओर निहार रही है। विश्वभर में कोई भी ग्लोबल कांफ्रेस व बड़ी कंपनियों की बोर्ड मीटिंग भारत की चर्चा करे बगैर खत्म नहीं होती। भारत दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और आईटी, फार्मा, टेक्नोलॉजी व सर्विस सेक्टर में आज ब्रांड इंडिया का सिक्का चलता है और अवसरों को देखकर अब अलग–अलग देशों में बसे भारतीय वतन लौट रहे हैं। भारत की तरक्की की सबसे बड़ी मिसाल यह है कि जो देश आज से 15 साल पहले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए हाथ फैलाए

कसौटी पर खरी उतर रही है हिन्दी काल गणना

विश्व के अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस बात को बड़े ही विश्वास एवं मजबूती के साथ कहा है कि दुनियां में हिन्दू काल गणना ही आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक काल गणना की हर कसौटी पर खरी उतर रही है। उपरोक्त बातें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के राष्ट्रीय सरकार्यवाह सुरेश सोनी ने वर्ष प्रतिपदा के अवसर पर कहीं। संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार का इस वसुन्धरा पर अवतरित होना इस बात का संकेत था कि आत्मभाव से दूर हो चुकी विश्व की मार्गदर्शक भारतीय संस्कृति व सभ्यता को पुनः अपनी धुरी पर वापस लाना है, जो संघ के द्वितीय सरसंघचालक प. पूज्य श्रीगुरूजी जन्मशताब्दी पर पूरे देश में हुई अनेक विद्वतजन संगोष्ठियों जाति बिरादरी सम्मलेनों एवं विशाल हिन्दू सम्मेलन में एक लाख तीस हजार लोगों के समरस समूह को देखकर अन्य मजहबों के प्रमुख इमाम व पादरियों ने स्वयं आकर यह कहा कि हमें आतंकवादियों व वेस्टर्न चर्च से कोई वास्ता नहीं। हम तो हिन्दुस्तान के ही निवासी हैं, हमें यहीं की संस्कृति एवं सभ्यता के साथ समरस होकर के जीना मरना है। अतः हम सब भी आप लोगों का स्वागत करना चाहते हैं। वहीं 92 प्रतिशत जाति बिरादरी के लोगों ने हिन्दू सम्मेलनों में भाग लिया। सभी के मन में एक उत्साह था, एक आशा की किरण जगी थी, कि वास्तव में समरसता का सूर्य अब संघ के प्रयासों से उदीयमान हो रहा है।

श्री सोनी ने संघ को कुछ तथाकथित डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों द्वारा कुछ समय पूर्व संघ के दलित विरोधी कहने के प्रश्न पर – महाराष्ट्र के एक कार्यक्रम के डॉ. घसाड़ नामदेव, जो स्वयं ऐसा कहा करते थे, के सामने मंच पर इस बात की चुनौती दी थी कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने समग्र 12 हजार पत्रों के लेखों में कहीं भी एक भी शब्द संघ विरोधी नहीं लिखा है, जिसे तत्कालीन मीडिया ने भी प्रमुख खबर बनाया था। अतः संघ स्थापना के प्रथम दिन से ही संघ शाखाओं में समरसता व्याप्त थी। आज आवश्यकता है, गांव समाज ही नहीं गली – मुहल्ले व अपने – अपने परिवारों व घरों में स्वयं सेवक अर्थात् स्वयं की प्रेरणा से समरसता के भाव जागृत कर वातावरण निर्माण की।

चीनी युवाओं में बढ़ रहा है आत्महत्या का रुझान

आर्थिक विकास की दौड़ में चीन ने युवाओं के लिए एक नयी समस्या खड़ी कर दी है। तेज रफ्तार जिंदगी और बढ़ते एकाकीपन के चलते उनमें आत्महत्या का रुझान बढ़ रहा है। चीनी मानसिक स्वास्थ्य संघ के ताजा आंकड़ों पर अगर विश्वास करें तो 15 साल से 34 साल की आयु वर्ग के लोगों में सबसे ज्यादा मृत्यु आत्महत्या के कारण होती है। आंकड़ों के मुताबिक पिछले साल इस आयु वर्ग में 26.04 फीसदी लोगों की मौत का कारण आत्महत्या थी।

जिन लोगों ने आत्महत्याएं कीं उनमें से ज्यादातर किशोर थे। चीन के युवाओं में आत्महत्या के प्रति तेजी से बढ़ते इस रुझान से समाज शास्त्री चिंतित हैं। पेंकिग यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने इस क्रम में दो साल का एक अध्ययन किया। इसके क्रम में उन्होंने हाई स्कूल के एक लाख 40 हजार से भी ज्यादा छात्रों के साथ साक्षात्कार किया। वे यह देखकर चौंक गये कि उनमें से 20.4 फीसदी स्कूल छात्रों ने कहा कि किसी न किसी मोड़ पर उन्होंने खुदकुशी के बारे में सोचा था। सर्वेक्षण रिपोर्ट में इस तथ्य को भी रेखांकित किया गया है कि स्कूली शिक्षा के एक खास चरण में लड़कों और लड़कियों में आत्महत्या की यह भावना ज्यादा प्रबल होती है। चीनी स्कूल शिक्षा पद्धति में प्राथमिक विद्यालय के बाद तीन साल की जूनियर हाई स्कूल शिक्षा का प्रावधान है। आत्महत्या के रुझान के मामले में ये तीन साल चीनी बच्चों के लिए बहुत खतरनाक होते हैं खास कर अंतिम दो साल। दूसरे और तीसरे साल के लड़के और लड़कियों का कहना है कि उन्होंने दूसरे ग्रेड़ों की तुलना में इस दौरान आत्महत्या के बारे में ज्यादा सोचा है। सर्वेक्षण के दौरान करीब 50 फीसदी लड़कों और 57 फीसदी लड़कियों ने कहा कि पिछले 12 महीने के दौरान उन्हें अकेलेपन से जूझना पड़ा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उम्र के साथ तन्हाई का यह एहसास भी बढ़ता है। बहरहाल 37 फीसद लड़कों और 40 फीसद लड़कियों ने नींद नहीं आने को कारण बताया है। उनका कहना है कि पिछले 12 महीने के दौरान उन्हें अकसर या हमेशा इस परेशानी से जूझना पड़ा है। इसके अलावा 17 फीसद युवाओं का कहना है कि अवसाद के कारण उन्हें दो हफ्ते या उससे भी लंबे काल के लिए अपनी दैनिक गतिविधियां रोक देनी पड़ीं।

इधर–उधर भटकता था, वह मोटी पूंजी का निवेश कर बड़ी–बड़ी विदेशी कंपनियों का अधिग्रहण कर रहा है।

स्वास्थ्य पर कोला के दुष्परिणाम

केन्द्र सरकार की तरफ से गठित विशेषज्ञों की एक समिति ने कोला शीतल पेय में कीटनाशक पदार्थों की मौजूदगी के कारण स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन की जरूरत पर बल दिया है। समिति ने सुप्रीम कोर्ट में पेश रपट में कहा है कि दूषित जल के उपयोग से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभाव के आकलन के लिए बेहतर व नियंत्रित अध्ययन की जरूरत है। विशेषज्ञ पैनल का गठन केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की तरफ से किया गया है व इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च के निदेशक एन के गांगुली इसके अध्यक्ष होंगे। समिति ने कहा कि पेय पदार्थों में अगर मान्य सीमा से अधिक कार्बनीकृत पदार्थ मौजूद हों तो इसका उपयोग हानिकारक हो सकता है।

स्वदेशी मिशाइल 'अस्त्र' का सफल परीक्षण

चार साल के लंबे अंतराल के बाद स्वदेश निर्मित हवा से हवा में मार करने वाली स्वदेशी मिशाइल 'अस्त्र' का चांदीपुर के एकीकृत परीक्षण रेंज (आई.टी.आर.) से प्रायोगिक परीक्षण किया गया। इसके साथ ही स्वदेश में विकसित सतह से सतह तक मार करने वाली पृथ्वी मिसाइल के नौ सैनिक संस्करण धनुष का बंगाल की खाड़ी में स्थित ओडीसा तट से होने वाला प्रक्षेपण फिलहाल स्थगित कर दिया गया है। हैदराबाद के रक्षा अनुसंधान व विकास प्रयोगशाला की ओर से विकसित यह अस्त्र एक आधुनिक व लंबी रेंज वाली मिसाइल है। इसके इंजन में ठोस प्रणोदक का इस्तेमाल होता है। यह चार मैक की गति हासिल करने में सक्षम है। अस्त्र का पहला प्रक्षेपण नौ मई 2003 को आईटीआर से किया गया था तथा दूसरा और तीसरा परीक्षण इसी रेंज से 11 मई और 12 मई 2003 को किया गया थ। अस्त्र के इस परीक्षण से पाकिस्तान को करारा झटका लगा है क्योंकि वह दावा कर रहा था कि उनके देश की परमाणु और मिसाइल प्रौद्योगिकी भारत से बेहतर है और और यह भी स्वीकार कर रहा था कि अमरीका से प्रतिस्पर्धा करना कठिन है।

पाकिस्तान में सुरक्षित नहीं हिन्दू

भारत के सत्तालोलुप नेता पाकिस्तान के साथ मैत्री संबंधों की कोशिश के पीछे भले ही राजनीतिक रोटियां सेंकतें हों, लेकिन इसके बावजूद हिन्दू पाकिस्तान में सुरक्षित नहीं है। पाकिस्तान में हिन्दू समुदाय को निशाना बनाकर अपहरण, हत्या की वारदातों में बढ़ोतरी आई है। पाकिस्तान हिन्दू परिषद ने वहां के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ को पत्र लिखकर अल्पसंख्यकों को सुरक्षा मुहैया कराने की अपील के साथ ही उन्हें बताया है कि सिंध प्रांत में हिन्दू रहते हैं, और उनके समुदाय के लोगों का अपहर और हत्या के बढ़ते मामलों के कारण अल्पसंख्यक समुदाय के लोग असुरक्षित महसूस करते हैं। परिषद के महासचिव के अनुसार पाकिस्तान में हिन्दू व्यापारियों को सरेआम उठा लिया जाता है, उनकी हत्या की जाती है और पुलिस इस तरह के मामलों की शिकायत तक दर्ज नहीं करती।

पाकिस्तान को हर मोर्चे पर सहयोग करने वाली अमरीकी सरकार आतंकवाद फैलाने में पाकिस्तान की भूमिका को लेकर दो धड़ों में बंट गई है। पाकिस्तान की

भूमिका को लेकर अमरीकी सरकार में विवाद छिड़ा हुआ है। एक और यहां जहां बुश प्रशासन आतंकवाद से निपटने में पाकिस्तानी राष्ट्रपति परवेज मुर्शरफ की तारीफ करते नहीं थक रहा है, वहीं अमरीकी कांग्रेस की एक ताजा रपट ने यह कहकर कि आज भी पाकिस्तान खूंखर आतंकवादियों का घर है और इसी घर से आतंकवादी गतिविधियों का नेतृत्व किया जा रहा है, राष्ट्रपति बुश को भी आतंकवाद के कटघरे में खड़ा कर दिया है। अमरीकी कांग्रेस अभी भी इस्लामी आतंकवाद का स्रोत और खूंखार आतंकवादियों का घर है, जहां अमरीका व भारत के खिलाफ आतंकी गतिविधियों को अंजाम दिया जाता है। रपट में अलकायदा को सबसे खतरनाक आतंकवादी संगठन बताया गया है। रपट के मुताबिक पाकिस्तान में फल फूल रहे आतंकवादी जहां नियंत्रण रेखा पार कर भारत में हिंसक गतिविधियों को अंजाम दे रहे हैं।

अन्नदाता आत्महत्या को मजबूर

किसान जिसे अन्नदाता कहा जाता है, खुद भूखा रहकर दूसरे का पेट भरता है, आज वह आत्महत्या को मजबूर है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना के नाम पर किसानों की जमीनों के अधिग्रहण, जिंसों के दामों का लाभ किसानों को न मिलने तथा किसानों की आर्थिक दशा व आत्महत्याओं के सवाल पर देश का किसान अब एकजुट हो रहा है। पंजाब के किसान संगठनों ने तो वाकायदा दिल्ली दरबार में दस्तक देनी भी शुरू कर दी है। इसी शुरूआत के चलते भारतीय किसान यूनियन के हजारों किसानों ने दिल्ली के गुरुद्वारा बंगला साहिब से जंतर मंतर तक एक रैली निकालकर सरकार को आगाह किया है और चेतावनी दी है कि सेज के नाम पर यह सरकार जो कुछ कर रही है वह ठीक नहीं है और देशहित में नहीं है, इसलिए इसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं।

स्वदेशी जागरण मंच का राष्ट्रीय विचार वर्ग 2007

स्वदेशी जागरण मंच का आगामी ग्रीष्मकालीन राष्ट्रीय विचार वर्ग का आयोजन दिनांक 17 से 21 मई 2007 को **विवेकानन्द सरस्वती विद्यामंदिर, साहिबाबाद उत्तर प्रदेश** में होगा। यह विचार वर्ग विशेष रूप से उत्तर भारत के प्रांतों के उन कार्यकर्त्ताओं के लिए होगा जहां बोल चाल की भाषा हिन्दी है। विचार वर्ग का माध्यम प्रमुख रूप से हिन्दी होगा। दक्षिण भारत के प्रांतों के हिन्दी में अभिरूचि रखने वाले कार्यकर्त्ता भी इसमें भाग ले सकते हैं। प्रांतों/संगठनों से राष्ट्रीय विचार वर्ग के लिए योग्य एवं सक्षम कार्यकर्त्ताओं को चयन करें एवं ऐसे चयनित कार्यकर्त्ताओं की सूचना केन्द्रीय कार्यालय को अविलंब देने को कहा गया है। विचार वर्ग में भाग लेने वाले कार्यकर्त्ताओं से भारतीय अर्थव्यवस्था, कृषि, उद्योग, व्यापार, वैश्वीकरण, विश्व व्यापार संगठन एवं स्वदेशी के बारे में सामान्य जानकारी होने की अपेक्षा रखी गई है।

विचार वर्ग के बारे में अन्य जानकारी निम्नानुसार है–

(1) प्रत्येक प्रांत से कम से कम तीन एवं अधिकतम पाँच कार्यकर्त्ता अपेक्षित हैं।
(2) सहयोगी संगठनों से भी कम से कम तीन एवं अधिकतम पांच कार्यकर्त्ता अपेक्षित हैं।
(3) कार्यकर्ताओं के चयन में महिलाओं का उचित प्रतिनिधित्व हो इस, बात का विशेष ध्यान रखा जाए।
(4) पंजीकरण शुल्क रुपये 200.00 (दो सौ मात्र) प्रति सहभागी तय किया गया है।

अल्पसंख्यक कौन?

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश के मुसलमानों को अल्पसंख्यक मानने से इन्कार कर तुष्टिकरण की राजनीति करने वालों के मुंह पर मानो तमाचा जड़ा है। भले ही हाईकोर्ट के आदेश पर फिलहाल रोक लग गई है मगर हर समझदार व्यक्ति के मन को यह सवाल कचोट रहा है कि इस देश में अल्पसंख्यक किसे माना जाए। संविधान के अनुच्छेद 25 से लेकर 30 तक भाषा और धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग हुआ है। किंतु इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि आखिर अल्पसंख्यक कौन है? उच्चतम न्यायालय के अनेक फैसलों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस समुदाय अथवा संप्रदाय की जनसंख्या 50 प्रतिशत से कम है उसे अल्पसंख्यक का दर्जा मिलना चाहिए। 2091 की जनगणना के मुताबिक पूरे देश के मुसलमानों की आबादी 13.1 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश में 18.5 प्रतिशत है जैन धर्मावलिबियों को भी उच्चतम न्यायालय ने अल्पसंख्यक मानने से इनकार कर दिया। कटु सत्य यह है कि प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय की आबादी अलग–अलग है और उनके वोट बैंक का वजन देखकर ही राजनैतिक दल उनके मुद्दे उठाते हैं उनकी मांगे जाति, धर्म और लिंग के आधार पर समानता के सिद्धान्त से भले ही मेल नहीं खाती। भाषाई अल्पसंख्यक और धार्मिक अल्पसंख्यक मापने के पैमाने अलग–अलग नहीं होने चाहिए। जम्मू कश्मीर में मुसलमानों की आबादी बहुसंख्यक है, फिर उन्हें देश के अल्पसंख्यकों वाली सुविधाएं क्योंकर दी जानी चाहिए। उच्चतम न्यायालय को भी इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले को उचित मानकर उत्तर प्रदेश के मुसलमानों को मिला अल्पसंख्यक दर्जा खतम कर देना चाहिए। लोकतंत्र के लिहाज से यही उचित होगा।

पेटेंट पर बढ़ता विवाद

पेंटट को लेकर एक बार फिर बहस की शुरूआत हो चुकी है। बहस की वजह यूरोपीय संघ द्वारा परम्परागत तरीके से विकसित बीजों को पेटेंट प्रदान करने से शुरू हुई है। यूरोपीय देशों ने इस प्रकार के विकसित नये बीजों के ऊपर उत्पाद एवं पद्धति (प्रोडक्ट एवं प्रोसेस) दोनों प्रकार के पेटेंट प्रदान किये हैं। विशेषज्ञों का यह मानना है कि इससे भारत सहित अन्य विकासशील देशों के यूरोपीय देशों के निर्यात होने वाले कृषि उत्पादों के ऊपर संकट बढेगा और दोनों के बीच व्यापार संघर्ष भी बढ़ने की संभावना है। म्युनिख जहां यूरोपीय देश का पेटेंट कार्यालय है वहां किसानों का प्रदर्शन एवं प्रतिरोध शुरू हो चुका है। भारत से भी विभिन्न किसान संगठनों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। उन्होंने कहा देश के किसानों के हितों को किसी भी कीमत पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों नहीं सौंपेगा। ज्ञातव्य हो कि 1981 से लेकर अब तक यूरोपीय पेटेंट कार्यालय में 151 जीन संवर्द्धित बीजों को पेटेंट प्रदान किया था। लेकिन अब इसी संस्था ने परम्परागत तरीके से बनाए गए बीजों पर भी पेटेंट प्रदान करना शुरू कर दिया है। भारत जैसे देशों में उत्पादित होने वाली अधिकांश फसलों की किस्में परम्परागत तरीके से बनाई जाती हैं। यदि इसके विरुद्ध आन्दोलन नहीं किया गया तो आने वाले दिनों में जहां एक और भारत का निर्यात प्रभावित होगा वहीं दूसरी और स्वदेशी बीजों पर किसानों का एकाधिकार समाप्त हो जाएगा।

दोहा वार्ता के संकेत

विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक पासकल लेमी ने शंका व्यक्त की है कि विश्व व्यापार वार्ता को सफल बनाया जा सकता है। लेकिन लक्षण ऐसे बन रहे हैं, जिससे यह दौर असफल साबित हो सकता है। उन्होंने कहा कि वार्ता की सफलता व असफलता सदस्य देशों के नेताओं की राजनीतिक इच्छा शक्ति पर निर्भर करती है। खासकर अमरीका यूरोपीय संघ एवं ब्राजील जैसे अन्य देशों पर। वारसिलोना में आयोजित खुदरा व्यापार सम्मेलन में बोलते हुए पास्कल लेमी ने कहा जो संभव हो सकता है वह अंसभव होने वाला है। उन्होंने फिर चैतावनी भरे अंदाज में कहा कि यदि वार्ता असफल होती है तो जिम्मेदार देशों को इसकी सजा भुगतनी पड़ सकती है। अमरीका के राष्ट्रपति की भांति ही व्यापार हित में निर्णय लेगी। यूरोपीय संघ के व्यापार आयुक्त पीटर मंडेलसन ने कहा कि यदि इस गर्मी तक आम सहमत नहीं बन पाती है तो अमरीका के राष्ट्रपति चुनाव से पहले वार्ता की कोई उम्मीद नहीं दिखाई देती। लेमी ने पुनः एकबार कहा कि अमरीका को व्यापक पैमाने पर व्यापार को हतोसाहित करने वाला कृषि सब्सिडी को अधिक पैमाने पर कटौती करना होगा तभी विकासशील देशों को विभिन्न मुद्दों पर मनाया जा सकता है।

घरेलू उद्योग की रक्षा के लिए विदेशी व्यापार कानून में संशोधन होगा

केन्द्र सरकार घरेलू उद्योग को सुरक्षा प्रदान करने के लिए विदेश व्यापार (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1992 में संशोधन करेगी। नए कानून के तहत सरकार आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंध (क्यूआर) लगाने के अधिकारों से पूरी तरह लैस होकर घरेलू उद्योग को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाने की कोशिश करेगी। सरकार की इस मुहिम से घरेलू औद्योगिक घरानों को काफी राहत मिलने की संभावना व्यक्त की जा रही है। सूत्रों का कहना है कि नये कानून के तहत घरेलू बाजार में डंपिंग नहीं होने की स्थिति में भी आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंध लगाए जाएंगे। मौजूदा कानून में ऐसे आयातों पर सेफगार्ड शुल्क लगाने का प्रावधान है। डंपिंग नहीं होने के बावजूद अभी सरकार आयात पर क्यूआर नहीं लगा सकती। प्रस्तावित संशोधन के तहत सेवा क्षेत्र से जुड़े आयातकों और निर्यातकों के लिए पंजीकरण को अनिवार्य बनाया जाएगा। मसलन होटल, स्वास्थ्य सेवा और पर्यटन से जुड़े उद्योग जो विदेशियों की सेवा करके विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं, को सरकार पंजीकृत करेगी।

दरअसल सरकार ने विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के उरूग्वे चक्र की वार्ता के प्रति लिए गए संकल्प के तहत 1996 से आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंध हटाना शुरू कर दिया और यह प्रक्रिया 31 मार्च 2001 को पूरी हो गई थी। मौजूदा दोहा चक्र की वार्ता में भारत ने कहा कि वह कृषि और औद्योगिक वस्तुओं पर सीमा शुल्क को कम करने को तैयार हैं। मगर अब सरकार की सोच है कि जरूरत पड़ने पर आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंध लगाया जा सकता है। यदि सुरक्षा के उपायों के तहत कुछ उत्पादों पर क्यूआर लगाया जाएगा उससे डब्ल्यूटीओ के नियमों का उल्लधन नहीं होगा क्योंकि वह प्रतिबंध तेजी से बढ़ रहे आयात को नियंत्रित करने के लिए सीमित अवधि के लिए लगाया जाएगा। सरकारी सूत्रों के मुताबिक वर्ष 2005 के विनाशकारी हथियार (डब्ल्यूएमडी) अधिनियम की तर्ज पर सेवा, सामान और दोहरे उपयोग वाली प्रौद्योगिकी के निर्यात को विनियमित (रेगूलेट) करने की योजना बना रही है। यह प्रस्ताव ईरान और कोरिया के परमाणु कार्यक्रम पर विश्व समुदाय की चिंता को देखने के बाद सरकार के समक्ष रखा गया है। भारत–अमरीका नागरिक परमाणु समझौते को जल्द कारगर बनाने की दिशा में भी इस प्रस्ताव को महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है।

सेवा क्षेत्र में पंजीकरण को आयातक–निर्यातक कोड (आईइसी) की तर्ज पर अनिवार्य बनाया जाएगा तथा उन तमाम सेवाओं को इसमें शामिल किया जाएगा जो विदेश व्यापार नीति से लाभ उठा रहे हैं। यानी ऐसे सेवा क्षेत्र के निर्यातक जो मशीन और मशीनराज के निर्यात संवर्द्धन योजना (ईपीसीजी) से लाभ ले रहे हैं उनका पंजीकरण अनिवार्य होगा। जानकारों के मुताबिक सरकार पहली बार सेवाओं को विदेश व्यापार अधिनियम में शामिल करने जा रही है। विनियमन की समग्र नीति के मद्देनजर भारतीय निर्यात संगठन संघ (फियो) जैसे औद्योगिक संगठन सरकार के नये प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं लेकिन सरकार संशोधन करने पर अमादा है। इस दिशा में संसद के पटल पर जल्द ही संशोधन विधेयक रखा जाएगा। चूंकि यह विधेयक राजनीतिक रूप से संवेदनशील नहीं होगा, अतः विधेयक का आसानी से पारित होना तय है। संसद की स्थाई समिति ने संशोधन के पक्ष में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि घरेलू उद्योग को आयात में आए उफान से बचाने के लिए पर्याप्त उपाय करने होंगे।